पवन दूतम् का समीक्षात्मक एवम् तुलनात्मक अध्ययन
मेघदूतम् तथा जैन मेघदूतम् के परिप्रेक्ष्य में

(बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी की पी-एच.डी. उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध प्रबन्ध)

वर्ष- २००७

शोध पर्यवेक्षक-
डॉ.शिवरामसिंह गौर
संस्कृत-विभागाध्यक्ष
(अवकाश पर)

कालपी कॉलिज, कालपी

शोधार्थिनी-
नीतू देवी
507B बर्रा - 8
कानपुर

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि नीतू देवी ने ''*पवन दूतम् का समीक्षात्मक एवम् तुलनात्मक अध्ययन मेघदूतम् तथा जैन मेघदूतम् के परिप्रेक्ष्य में*'' शीर्षक से संस्कृत विषय में पी-एच. डी. उपाधि प्राप्ति हेतु मेरे निर्देशन में निर्धारित अवधि तक रहकर कार्य किया है। इनका यह कार्य इनकी मौलिक कृति है जो इनकी शोध दृष्टि की परिचायक है।

मैं इस शोध प्रबन्ध को प्रस्तुत करने की संस्तुति के साथ इनकी सफलता की कामना करता हूं।

वर्ष- २००७

डॉ.शिवरामसिंह गौर
संस्कृत-विभागाध्यक्ष
(अवकाश पर)

कालपी कॉलिज, कालपी

आभार- ज्ञापन

काव्य विधा केवल विद्वानों और मनीषियों को ही उत्प्रेरित नहीं करती अपितु इससे सामान्य जन भी उत्प्रेरित और आनन्दित होते हैं। छात्र जीवन में अन्य साहित्य विधाओं की अपेक्षा मुझे काव्य विधा अधिक आकर्षित करती रही है और मैं इस विधा के कवियों से अधिकतम रूप में प्रभावित रही हूँ। अपना अध्ययन पूरा करने के बाद जब शोध कार्य करने की इच्छा मेरे मन में जाग्रत हुई तो मुझे दूत साहित्य में पवनदूतम् और मेघदूतम् की विषय वस्तु तथा इसकी व्यञ्जना अधिक आकर्षित लगी। फलतः मैंने जैन खण्ड काव्य और संस्कृत खण्ड काव्य का यह तुलनात्मक अध्ययन किया। इसमें मैं भगवान् शिव और भगवती शिवा के अनुग्रह के प्रति नतमस्तक हूँ।

मेरे इस कार्य के निर्देशन के लिए डॉ. शिवरामसिंह गौर अध्यक्ष, संस्कृत विभाग कालपी कॉलिज, कालपी वर्तमान में प्राचार्य हर सहाय जगदम्बा सहाय कॉलिज, कानपुर ने कृपा कर अनुमति प्रदान की और यह कार्य मैंने इनके निर्देशन में पूरा किया। इनका जो आत्मीय भाव मिला और जिस रूप से मैं इनके निर्देशन में यह कार्य समपन्न कर सकी, एतदर्थ मैं इनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ।

श्री अग्रसेन महाविद्यालय, मऊरानीपुर (झाँसी) के पूर्व संस्कृत विभागाध्यक्ष ने मेरा अपूर्व सहयोग किया है, एतदर्थ मैं उनके प्रति अपना आभार प्रकट करती हूँ। मेरे पिता श्री शिवमोहनसिंह और माता श्रीमती उर्मिलासिंह के स्नेहाशीष का यह परिणाम है कि मैं यहाँ तक पहुँच सकी। इनका ऐसा ही स्नेह मिलता रहे- यही मेरी कामना है। इसी प्रकार अपने परिवारी जन श्री एन. डी. सिंह राठौर और श्रीमती नीलमसिंह के प्रति भी नतमस्तक हूँ जिनकी कृपा इस कार्य सम्पादन में रही। अन्य जो मेरे अपने हैं वे तो प्रसन्न हैं ही, और उनका अनेकशः आभार है। इस शोध प्रबन्ध को तैयार करने में श्री लक्ष्मी कान्त गुप्त, जयभारत प्रेस, मऊरानीपुर (झाँसी) तथा आकांक्षा फोटो स्टेट का सहयोग भी प्रशंसनीय है, और इनके लिए मेरा धन्यवाद है।

वि. सं. २०६४

नीतू देवी

शोधार्थिनी-

नीतू देवी

507B बर्रा - 8

कानपुर

अनुक्रमणिका

प्रस्तावना-

प्रथम अध्याय

(गीतिकाव्य का उद्भव और विकास)

द्वितीय अध्याय

(कवि परिचय एवम् सांस्कृतिक विवेचना)

4. वास्तु सामग्री–क. विवेच्य काव्यों में मानव भवन, प्रासाद, अट्टालिका कीडा उपवन, वापी, सरोवर आदि

ख. देवभवन– शिव मन्दिर, विष्णु मन्दिर, सूर्य मन्दिर आदि।

ग. मूर्तिकलाएँ

घ. जलक्रीडा, संगीतक्रीडा, रतिक्रीडा आदि

ड़. संस्कार, स्वरूपादि

च. आश्रम व्यवस्था, स्वरूपादि

तृतीय अध्याय

(श्रृंगार प्रसाधन एवं सौन्दर्य)

(क) वस्त्रदुकूल

(ख) आभूषण एवं सौन्दर्य प्रसाधन–

1. कर्णाभूषण, हार, कंकण, माला, कुण्डल आदि
2. प्रसाधन, चन्दन जल, कस्तूरी लेप, लाक्षारस, केश विन्यास आदि

(ग) नारी शरीरावयव–

मुख, नेत्र, भ्रू, ओष्ठ, कटि आदि

(घ) पुरुष शरीरावयव–

चरण, नेत्र, वक्ष, उरु, कर आदि

चतुर्थ अध्याय

(तुलनात्मक साहित्यिक विवेचन)

(क) पवनदूतम् का चरित्र–चित्रण

1. नायक– लक्ष्मणसेन, यक्ष हेममाली, नेमिनाथ, तुलना
2. नायिका– कुवलयवती, यक्षिणी विशालक्षी तथा राजमती से तुलना

(ख) अलंकार विमर्श– वर्गीकरण

3. विवेच्य कार्यों में अलंकार योजना–

उपमा, उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास, अन्य अलंकार

(ग) रस विमर्श–

स्वरूप, श्रृंगार, करूण, वीर आदि

(घ) छन्द विमर्श–

वर्गीकरण

(ङ) आलोच्य काव्य और मन्दाक्रान्ता

पंचम अध्याय

(विवेच्य ग्रन्थों में प्रकृति चित्रण एवम् भौगोलिक दर्शन)

1. प्रकृति
2. प्रकृति के विविध रूप–

    1. प्रकृति का मनोहारी रूप 2. दौत्य रूप 3. सेविका रूप
    4. उपकारिका रूप 5. शिक्षिका रूप 6. माननीय रूप

3. भौगोलिक स्थान–

    1. माल्यवान पर्वत, रामगिरि, आम्रकूट, कैलाश, नीच्चैः, हिमालय रैवत, मेरु पर्वत।
    2. सरिताएँ– गंगा, कावेरी, क्षिप्रा, निर्विन्ध्या, नर्मदा, सुबला
    3. सागर तथा सरोवर– सरोवर
    4. नगर– काञ्चीपुरम्, उरगपुर, उज्जयिनी, अलकापुरी
    5. तीर्थ– पञ्चापसर
    6. प्रदेश– मालप्रदेश
    7. मन्दिर– महाकालेश्वर
    8. देश– दशार्णदेश
    9. उपसंहार– समीक्षा

उद्धृत ग्रन्थ-संकेत सूची

१. अ० पु०	अग्निपुराण
२. आ० क० गौ० ग्र०	श्री आर्य कल्याण गौतम स्मृति ग्रन्थ
३. ऋक्	ऋग्वेद
४. का० प्र०	काव्य प्रकाश
५. का.सू.	काव्यालंकार सूत्र
६. काव्या.	काव्यादर्श
७. गी.गो.	गीतगोविन्द
८. चन्द्रा.	चन्द्रलोक
९. छ. अ.	छन्दोऽनुशासन
१०. छ.म.	छन्दो मंजरी
११. जै.मे.दू.	जैन मेघदूतम्
१२. तै.सं.	तैत्तरीय संहिता
१३. ध्व.आ.	ध्वन्यालोक
१४. ना. शा.	नाट्यशास्त्र
१५. नी. श.	नीतिशतक
१६. ने. दू.	नेमिदूतम्
१७. नो. सं. लि.	नोट्स आफ संस्कृत लि० खण्ड प्रथम

१८. प. दू.	पवनदूतम्
१६. पि.छ. सू.	पिंगलछन्द सूत्र
२०. बृ.उ.	बृहदारण्यकोपनिषद्
२१. मु.उ.	मुण्डकोपनिषद्
२२. मे.दू. (पू.)	मेघदूतम् (पूर्व)
२३. मे.दू.(उ.)	मेघदूतम् (उत्तर)
२४. रस. सि.	रस सिद्धान्त
२५. वृ. र.	वृत्त्रारत्नाकर
२६. वृ.मौ.	वृत्तमौक्तिक
२७. वृ.वा.	वृत्तवार्तिक
२८. वै.श.	वैराग्य शतक
२६. सं.सं.का.	संस्कृत के संदेश काव्य
३०. सं.सा.रू.	संस्कृत साहित्य के इतिहास की अलोचनात्मक रूपरेखा
३१. सं.सा.स.इ.	संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास
३२. सं.सा.इ.(शा.)	संस्कृत साहित्य का इतिहास
३३. सा. द.	साहित्य दर्पण
३४. सा. द.	साहित्य दर्पण
३५. सु. ति.	सुवृत्त तिलक

३६. श. ब्रा.	शतपथ ब्राह्मण
३७. शृ.श.	शृङ्गार शतक
३८. श्रु. बो.	श्रुतबोध
३६. हि.सं. लि.	हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटिरेचर
४०. शी. लू.	शीलदूतम्

प्रथम अध्याय

(गीति काव्य का उद्भव और विकास)

प्रथम अध्याय

(गीति काव्य का उद्भव और विकास)

संस्कृत भाषा विश्व की न केवल प्राचीनतम भाषा है अपितु यह एक ऐसी भाषा है, जिसकी तुलना विश्व की अन्य किसी भाषा से नहीं की जा सकती है। इस भाषा में जीवन को जिन अनेक रूपों में प्रकट किया गया है, वह भी इसी भाषा का सामर्थ्य है, और ऐसा सामर्थ्य अन्य किसी भी भाषा में दिखाई नहीं देता है। मनुष्य का हृदय मूल रूप से भावना प्रधान होता है और भावना का सम्बन्ध मनुष्य के जीवन से होता है। इस जीवन में भावनायें अनेक रूपों में प्रकट होती हैं। कभी इनका रूप राग का होता कभी विराग का होता है, कभी अहिंसा का होता है तो कभी हिंसा का भाव भी इसके मन में होता है। इन भावों के अतिरिक्त यह कभी-कभी तटस्थ रूप में भी रहता है। मनुष्य की अनेक प्रकार की भावनाएं जब प्रगाढ़ हो जाती हैं तो वे शब्द रूप में आकार ग्रहण करके कविता बन जाती हैं। क्योंकि कविता का सम्बन्ध भावना से हैं। इस रूप में भावना से सम्बन्धित काव्य जब प्रस्फुटित होकर सामने आता है तो वह जीवन-दर्शन के रूप में दिखाई देने लगता है। इस रूप में यह कहना ही संगत होता है कि मनुष्य की भावनाएं जब प्रगाढ़ होकर उसे उद्वेलित करती हैं, और उस उद्वेलन से जब वह काव्य की सृष्टि करता है तो वह कविता केवल मनोरन्जन का साधन नहीं बनती, अपितु वह मनुष्य के जीवन में प्रतिफलित होने वाले दर्शन का स्वरूप बनती है। इसलिए काव्य मनुष्य-जीवन का एक महत्वपूर्ण कारक होता है।

काव्य के जन्म का जो इतिहास है, उसमें भी यही माना गया है कि कविता का जन्म मानव की चेष्टाओं और क्रियाओं से हुआ है। उसकी वे चेष्टायें काव्य बन गयी हैं जिनके साथ उनकी मेधा का जुड़ाव है। कवि क्रान्ति दर्शी होता है। वह अपनी मेधा के बल से अतीत और अनागत को जान लेता है तथा अपनी सूक्ष्मदृष्टि से संसार-पदार्थों का परिचय प्राप्त कर लेता है। कवि क्रान्ति दर्शी है, मनीषी है, प्रजापति है स्वयंभू है। उसमें अनेक ऐसी शक्तियाँ हैं, जो सामान्य व्यक्ति में नहीं होतीं। यद्यपि उसका सम्बन्ध भौतिक जगत् से होता है और अन्य व्यक्तियों की तरह कवि भी प्रत्यक्षदर्शी ही है तथापि वह अपनी अलौकिक प्रतिभा से पूर्वापर का ज्ञान कर लेता है और इसी दृष्टि से वह निर्माता और सर्जक कहा जाने लगता है।

काव्य का जो स्वरूप कहा गया है उसमें मुख्यतः शब्दों की प्रधानता होती है। इसमें सुन्दर सरल और सरस शब्द ही काव्य होते हैं। आचार्य मम्मट ने काव्य के जिस स्वरूप का आख्यान किया है उसमें यह कहा गया है कि वह अर्थात् काव्य की मूल इकाई पद जो अर्थ से समन्वित हो, उसे दोषों से रहित होना चाहिए। काव्यों के पद ऐसे हों, जो दोषरहित होने के साथ गुणवान भी होवें अर्थात् काव्य के पद ऐसे न होवें जो गुणहीनता के कारण काव्य बनने की क्षमता ही न रखते हों। इसलिए वह काव्य दोषरहित हो, गुणयुक्त हो और काव्य के शब्द तथा अर्थ में अलंकारों की विद्यमानता भी होनी चाहिए।[1]

---

1. का. प्र., सूत्र-1

काव्य में कौन से ऐसे तत्व होते हैं, जो उसे रसवान बनाते हैं, इस पर भी विद्वानों द्वारा विचार किया गया है। भारतीय विद्वान इस सम्बन्ध में यह मानते हैं कि काव्य में रस एक ऐसा आत्मतत्व है जो काव्य को आनन्द देने वाला बनाता है इसलिए आचार्य विश्वनाथ ने 'वाक्यम् रसात्मकं काव्यम्' कहकर काव्य की विशेषताओं में रस को उसका मूल तत्व माना है। पाश्चात्य विद्वान् भी इस तत्व की ओर दृष्टिपात करते हैं, जिसमें वे काव्य तत्वों में रागात्मक तत्त्व, कल्पनातत्त्व, बुद्धितत्त्व और शैली तत्त्व को अनिवार्य मानते हैं। इसमें वे कहते हैं काव्य में रागात्मकता ही ऐसा तत्त्व है जो काव्य को आनन्दमयी बनाता हैं। एक पाश्चात्य विद्वान् वर्डस वर्थ भाव तत्त्व की व्याख्या करते हुए यह निरूपित करता है कि 'काव्य शान्ति के समय में स्मरण किए गए प्रबल मनोवेगों का स्वच्छन्द प्रवाह है।[१]'' एक–दूसरे पाश्चात्य विद्वान् ने अभिव्यक्ति तत्व को कविता का महत्वपूर्ण तत्त्व मानकर यह मत व्यक्त किया है कि कविता उत्तमोत्तम शब्दों का उत्तमोत्तम क्रम विधान है।[२] इस रूप में भारतीय परम्परा में किसी ने काव्य के रस को, किसी ने काव्य में प्रयुक्त किए गए अलंकार को, किसी ने रीति को, किसी ने ध्वनि को और किसी आचार्य ने वक्रोति को काव्य के प्रमुख तत्त्व के रूप में मान्यता प्रदान की है।

---

1. प. दू., पृष्ठ–2 ।
2. वही, पृष्ठ– 2 ।

काव्य की विविध रचनाओं में जब विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया तो उसके बाद आचार्यों ने उत्तम मध्यम और अधम रूप से काव्य को तीन प्रकार से विभाजित किया। इसमें आचार्य मम्मट ने अपना यह दृष्टिकोण दिया जो व्यंग्य सहित काव्य है वह उत्तम कोटि का काव्य है जिसमें कुछ-कुछ व्यंग्य है उस काव्य को मध्यम काव्य के रूप में कहा गया। इसके विपरीत उस काव्य को अधम काव्य कहा गया जिसमें व्यंग्य का प्रयोग नहीं है अर्थात् जो काव्य व्यंग्यहीन है, उसे अधम काव्य की श्रेणी में गिना गया।

काव्य के इस विभाजन को प्रस्तुत करते हुए इसके दो विभाजन और किये गये। इनमें दृश्य काव्य और श्रव्य काव्य को सम्मलित किया गया। नेत्रों के द्वारा देखकर जिस काव्य से दर्शक के मन में आनन्द की अनुभूति होती है उसे दृश्य काव्य कहा जाता है। इस प्रकार का काव्य रूपक, नाटक तथा प्रकरण आदि होता है, जिसे देखकर रस प्राप्ति होती है। श्रव्य काव्य उसे कहा जाता है जिसे सुनकर पाठक अपने मन में रसानुभूति करता है। इस विभाजन के साथ ही गद्य-पद्य और चम्पू काव्य के रूप में कविता का शैली गत भेद भी किया गया है। इसमें गद्य में लिखा गया काव्य गद्य काव्य, पद्य में लिखा गया काव्य पद्य काव्य और चम्पू को इनसे पृथक् बताया गया है। यह काव्य का शैली गत विभाजन है ।

(क) खण्ड काव्य के लक्षण-

श्रव्य काव्य की विधा में दो तरह के काव्यों का कथन किया गया है। इस काव्य में यह कहा गया है कि श्रव्य काव्य प्रबन्ध काव्य तथा मुक्तक काव्य के रूप में दो प्रकार का होता है। इसमें भी प्रबन्ध काव्य को महाकाव्य और खण्ड काव्य के रूप में जाना जाता है। खण्ड काव्य को गीति काव्य के नाम से भी कहा गया है क्यों कि गीति काव्य के नाम से कोई अन्य ऐसा काव्य नहीं है जो संस्कृत भाषा में प्राप्त होता हो और जिसका अन्यत्र कहीं कोई लक्षण दिया गया हो। खण्ड काव्य के पद गेय होते हैं इसीलिए सम्भवतः ऐसे पदों के काव्य को गेय काव्य कह दिया गया है। खण्डकाव्य में गीति काव्य का जो लक्षण दिया है, उसके आधार पर यह कहा गया है कि इस काव्य में महाकाव्य के पूरे लक्षण नहीं होते। ऐसा काव्य पूर्व और अपर प्रसंग की आवश्यकता से बंधा हुआ नहीं होता। यह अपने आप में पूर्ण स्वतन्त्र होता है और इसका प्रत्येक पद स्वच्छन्द होता है। साहित्य दर्पणकार ने इसका लक्षण देते हुए लिखा है कि खण्ड काव्य एक देश का ही बोध कराने वाला होता है।[1]

एक अन्य स्थान पर यह कहा गया है कि खण्डकाव्य में जो मुक्त छन्द होता है वह पूरी तरह से स्वतन्त्र तो होता ही है, उसके लिए यह आवश्यक है कि उसमें चमत्कृत करने का सामर्थ्य होवें।

---

1. खण्डकाव्यं भवेत् काव्यस्येक देशानुसारि च। वही पृ. 6/239

अर्थात् खण्ड काव्य के मुक्तक छन्द में ऐसी सामर्थ्य हो कि वह अपनी सामर्थ्य से पाठक को चमत्कृत कर सकता हो।[1]

आनन्द वर्धन ने भी मुक्तक काव्य के विषय में अपना विचार व्यक्त किया है। उन्होंने अपना मत जिस रूप में दिया है उसमें यह कहा है कि मुक्तक काव्य में इसकी प्रतीति महत्वपूर्ण रीति से होनी चाहिए। इसमें भाव की प्रधानतता होनी चाहिए।[2]

(ख) खण्ड काव्य की विशेषतायें-

खण्ड काव्य अथवा गीतिकाव्य का उद्गम संस्कृत वाङ्मय में आरम्भ काल से ही माना जा सकता है। ऋग्वेद में इन्द्र, वरूण, ऊषस्, सविता आदि देवों की जो स्तुतियाँ हुई हैं, उन स्तुतियों के पद स्वतन्त्र रूप से रचित हैं और गेय हैं। इसलिए ये पद ही खण्ड काव्य अथवा गीतिकाव्य के आदि स्त्रोत हैं। आगे चलकर बाल्मीकि रामायण, महाभारत, भागवद् पुराण और नारद पुराण ऐसे अनेक ग्रन्थ हैं, जिनमें खण्डकाव्य का आदि स्वरूप देखने को मिलता है। लौकिक संस्कृत साहित्य में कालिदास ऐसे कवि हैं, जिन्हें खण्ड काव्य अथवा गीतिकाव्य के प्रमुख प्रस्तोता के रूप में देखा जा सकता है। यहाँ पर यह भी संकेत करने योग्य है कि वर्तमान समीक्षा दृष्टि में खण्ड काव्य और गीति काव्य को एक ही मानना उचित नहीं है। क्योंकि खण्डकाव्य विषय प्रधान होता है इसमें कथावस्तु और बाह्य चित्रण आवश्यक होता है।

---

1. मुक्तकं श्लोक एवैकश्चमत्कारक्षमः शताम्। अ. पु. 336/36
2. प्रबन्धे मुक्तके वापि रसादीन् बन्द्धुमिच्छता। तत्र मुक्तकेषु रसेबन्धाभिनिवेशिनः कवेस्तदाश्रयमौचित्यम्। दक0 आ0 73

गीति काव्य विषयि प्रधान होता है, इसमें कथावस्तु मुख्य न होकर वैयक्तिक भावना, मानसिक अवस्था, व्यक्तिगत सुख–दुख, हर्ष, शोक, विलास, विषाद आदि मुख्य होते हैं। इसमें कवि अपने मन के भावों को अपनी अनुभूतियों और संवेदनाओं को कविता के माध्यम से प्रकट करता है।[1]

इस दृष्टि से यह कहा जाता है कि संस्कृत साहित्य में जो खण्ड काव्य हैं वे एक प्रकार से गीतिकाव्य के रूप में जाने जाना चाहिए। गीतिकाव्य की इस परम्परा को समीक्षाकारों ने प्रमुख रूप से शृंगारिक गीति काव्य और धार्मिक गीति काव्य के रूप में निरूपित किया है। इनमें से जो शृंगारिक गीतिकाव्य हैं, उनमें न केवल बाह्य सौन्दर्य को स्थापित किया गया है, अपितु उनमें आन्तरिक सौन्दर्य पर भी पर्याप्त विचार किया गया है। धार्मिक गीति काव्यों में अपने उपास्य के प्रति आदर भावना को व्यक्त किया गया है, जिसमें भावों की प्रधानता है और अनुभूति की महत्ता है।

गीति काव्यों की जो विशेषताऐं हैं उनमें सबसे बड़ी विशेषता तो यह है कि इनमें जीवन की अनुभूति की गहरी संवेदना है। सुख–दुख का जैसा मार्मिक वर्णन इसमें है, वैसा अन्यत्र दुलर्भ है। संस्कृत गीतिकाव्यों में भाषा की सुकुमार पदावली का प्रयोग किया गया है जिसके माध्यम से इसमें मधुर भावों की अभिव्यक्ति है। गौणी शैली का प्रयोग लगभग नहीं है और समास बाहुल्य भाषा का पाण्डित्य प्रदर्शन भी नहीं किया गया है।

---

1. सं.सा. स. इ., पृ0 522

गीति काव्यों की एक विशेषता यह भी है कि इनमें कोई भी कवि किसी के भी भाव लेने के लिए परतन्त्र नहीं है। वह एक ऐसा पक्षी हैजो स्वतन्त्र वातावरण में उन्मुक्त रूप से विचरण करता है। वह सभी विषयों सभी भावों और कल्पनाओं को सुनियोजित ढ़ग से अपने शब्दों में गूंथता है। इस प्रकार से वह ऐसे काव्य सृजन करता है जो अनूठा और अनुपमेय होता है। गीति काव्यों की विषय वस्तु सुकुमार प्रकृति की गोद में खेलती है, शृंगार रस का बाहुल्य होता है भक्ति भावनायें जीवन की अनुभूतियाँ इसमें समाहित होती हैं। सरल, सरस भाषा और कोमल कान्त पदावली का अनुपम प्रयोग होता है। गीति काव्यों में भाव पक्ष की ऐसी उदारता होती है जिसमें कल्पना, संवेदना और अनुभूति मुख्य तत्त्व के रूप में होते हैं। कलापक्ष इसमें गौड़ रहता है। भावों की धारावाहिता और उनका स्फुरण मार्मिक रूप से व्यक्त होता है।

शृंगारिक गीति काव्यों में मुख्य रूप से रमणी का सौन्दर्य प्रस्तुत किया जाता है जिसमें उसका नख-शिख वर्णन होता है। कटाक्ष पात निरूपित होता है शृंगारिक भावनाओं की प्रस्तुति होती है। उनके बाह्य सौन्दर्य के साथ में उनका आन्तरिक सौन्दर्य भी निरूपित होता है। उनके हृदय का सौन्दर्य सहज प्रेम नैसर्गिक सुषमा, शील, दया, लज्जा करूणा आदि भावों को बड़ी ही सहजता तथा कुशलता के साथ प्रस्तुत किया जाता है।

जिन गीति काव्यों में नैतिक विषयों को स्थान दिया गया है उनमें नैतिकता को पूर्ण उदारता के साथ स्थापित किया गया है। जिन गीति काव्यों में शृंगार को महत्ता दी गई है, उनमें भी नैतिक शृंगार ही मान्य है। किसी भी प्रकार का अनैतिक शृंगार खण्ड काव्यों में स्वीकार्य नहीं है। इसलिए जीवन का जो असंयत भोग है, भारतीय परम्परा के अनुसार खण्डकाव्यों में उसे भी स्थान नहीं दिया गया है।

प्रकृति के चित्रण में उदात्त भावों को भी स्थान मिला है। प्रकृति भी इस रूप में उपस्थित है, जिसमें उसका मानवीयकरण हो सका है। जिस तरह से मनुष्य सुख-दुख आदि का अनुभव करता है, प्रकृति भी उसी तरह से मानवीय होकर सुख-दुख के अनुभव से समन्वित रहती है।

यद्यपि गीति काव्यों की अधिकता ऐसे काव्यों की है जिन्हें शृंगार बहुल कहा जा सकता है किन्तु शृंगार की इस प्रस्तुति के साथ-साथ इन काव्यों में मनुष्य के जीवन दर्शन को उपस्थापित किया गया है। इस जीवन दर्शन में उसकी नैतिकता और उसके जीवन में संसार की विरिक्त का महत्वपूर्ण स्थान है। यदि व्यक्ति नीतिवान् है तो वह मनुष्य के रूप में मान्य है और इसी तरह यदि वह इस संसार के बन्धन से मुक्ति का उपाय नहीं खोजता तो वह अपूर्ण है। गीति काव्यों में इन विषयों का समावेश किया गया है।[1]

---

1. सं.सा. स. इ., पृ0 522

वर्गीकरण :–

काव्य संरचना की दृष्टि से जब खण्ड काव्य का समालोचन किया जाता है तब यह देखा जाता है कि यह काव्य विधा दो प्रकार से प्रवर्तित हुयी है। इसका एक रूप ऐसा है जो मुक्तक कहा जाता है और यह इसका रूप अपने आप में पूर्ण स्वतन्त्र होता है। अर्थात् अपने नाम के अनुरूप मुक्तक सभी प्रकार से स्वतन्त्र होता है।

मुक्तक काव्य :–

इस काव्य में किसी प्रकार का ऐसा बन्धन नहीं होता जो एक दूसरे को बांधता हो। मुक्तक काव्य का प्रत्येक छन्द मुक्त होता है और इसके छन्द के अर्थ के लिए किसी भी प्रकार से पूर्वापर के सम्बन्ध की अपेक्षा नहीं होती है। इसका प्रत्येक पद अपना अर्थ देने में स्वयं ही सक्षम होता है और इसी तरह से इसका प्रत्येक पद रस की अनुभूति कराने में भी स्वतन्त्र होता है। यह हम भृर्तहरि शतक और अमरूक शतक आदि में देख सकते हैं। इन खण्ड काव्यों के पदों में कथानक का और उसकी तारतम्यता का उतना महत्व नहीं होता जितना महत्व इसके पदों से व्यक्त होने वाले वर्ण माधुर्य और रस माधुर्य का होता है। मुक्तक काव्य में ज्ञेयता, छन्द विधान, रस पेशलता और श्रुति माधुर्य महत्वपूर्ण ढ़ग से समायोजित होती है। जब कवि मुक्तक काव्य की रचना करता है तब वह अपने हृदय के भावों को ललित पदों द्वारा ग्रथित करके हृदय की अनुभूति को इस प्रकार से प्रस्तुत करता है जिसमें उसे आनन्द की अनुभूति हो और श्रोता भी तन्मय होकर उसी में डूब जाये। मुक्तक काव्य के वर्णन का क्षेत्र असीमित नहीं अपितु सीमित होता है। इसमें जीवन की समग्रता नहीं है अपितु एकाग्रता होती है। इसमें विस्तार की अपेक्षा सूक्ष्मता को बहुत अधिक महत्त्व दिया जाता है। कहीं–कहीं पर तो यह भी देखने को मिलता है कि गीति काव्य में केवल पद्यों का ही

समावेश नहीं होता है अपितु गद्य का भी प्रयोग होता है। गीत गोविन्द में पद्य के साथ-साथ गद्य का प्रयोग भी किया गया है।[1] इसी के साथ जब मुक्तक काव्य का और अधिक विवेचन किया जाता है तो यह कहा जाता है कि मुक्तक काव्य में किसी क्रमबद्ध परम्परा का अनुसरण न होने से इसमें संक्षिप्तता ही होती है। मुक्तक काव्य में प्रायः विस्तार का कोई स्थान नहीं होता। इसके पद्यों का स्वतन्त्र अर्थ होने से श्रोता इसका पूर्वापर भी न जानकर इसकी वर्णन शैली से अविभूत हो जाता है और आनन्द का अनुभव करने लगता है।

प्रबन्धात्मक गीतिकाव्यः-

गीतिकाव्यों का जो दूसरा भेद है उसे मुक्त काव्य के विपरीत प्रब-न्धात्मक काव्य से व्यक्त किया गया है, इसमें यह कहा जाता है कि प्रब-न्धात्मक गीति काव्य में मुक्तक काव्य के विपरीत इसके पद्य परस्पर एक दूसरे के प्रति अर्थ के लिए आश्रित होते हैं। इस प्रकार के गीतिकाव्य में किसी एक नायक अथवा नायिका की जीवन की किसी एक घटना को लेकर यह रचना की जाती है और इसमें उस कथानक को पूर्वापर क्रम से जुड़ाव व्यक्त किया जाता है। यह अवश्य है कि प्रबन्धात्मक गीतिकाव्य में भी कोई बहुत बड़ा कथानक प्रस्तुत नहीं होता और न ही इसके कथानक का इतना महत्त्व होता है कि पाठक इसके कथानक के उलझाव में उलझकर रह जाये। प्रबन्धात्मक गीतिकाव्य में जो कथानक होता है वह केवल नाम मात्र का होता है जबकि गीतिकाव्य की इस विधा में भावों की कोमलता, रस की पेशलता और भाषा की मनोरमता पर अधिक बल दिया जाता है। मेघदूत खण्डकाव्य की रचना इसी शैली की रचना है और इसमें कथानक के साथ-साथ भाषा, भाव और कल्पना की मनोरमता है।

---

1. सं.सा. स. इ., पृ0 174

वर्ण्य विषय की दृष्टि से वर्गीकरण :-

संस्कृत गीतिकाव्य परम्परा में अनेक गीतिकाव्यों की रचना हुयी है और इसकी रचना की एक लम्बी परम्परा है, गीतिकाव्यों की इस रचना परम्परा में कवियों ने अनेक प्रकार के विषयों को ग्रहण किया है और उन विषयों को प्रस्तुत करते हुए गीतिकाव्यों की रचना प्रस्तुत की गयी है। इन विषयों के आधार पर समालोचकों ने गीतिकाव्यों का विभाजन किया है और इस आधार पर जो विभाजन किया गया है उसमें सन्देश काव्य, शृंगार गीतिकाव्य और शुद्ध गीतिकाव्य के रूप में इनके विभाजन को देखा गया है। इनका यह विभाजन शुद्ध रूप से विषय की दृष्टि से किया गया है।

स्तोत्र गीतिकाव्यः-

स्तुतियों अथवा भक्तिभावों से सम्बन्धित जो गीतिकाव्य हैं उन्हें स्तोत्र गीतिकाव्य की संज्ञा से विभूषित किया जाता है। ऐसे गीतिकाव्यों में आध्यात्मिक भावना से ओत-प्रोत पद्य रचित होते हैं। इन पदों को पढ़ने से भक्त का हृदय भक्ति भाव से गद्‌गद् हो जाता है और उसके हृदय में आध्यात्मिक भावों का समावेश स्वतः ही हो जाता है। भारतीय परम्परा में विभिन्न मत मतावलम्बी आचार्य ऐसे रहे हैं जिन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से अपने-अपने इष्ट देवों का स्तवन किया है। इस परम्परा में शिव भक्तों ने भगवान् शिव की स्तुतियां रचित करके ख्याति प्राप्त की तो दूसरी ओर वैष्णव परम्परा के आचार्य भी विष्णु की उपासना करके प्रसिद्ध हुए। इस परम्परा के स्तोत्र काव्य प्राचीन काल से ही रचे जाते रहे हैं। कहीं पर रुद्र की स्तुति की गयी, कहीं पर सूर्य की स्तुति की गयी, कहीं पर महिमन स्तोत्र लिखा गया। कहीं पर दुर्गा और कृष्ण की स्तुति हुयी और कहीं पर अन्य देवी-देवताओं का स्तवन हुआ। और इस प्रकार से यह कहा जा सकता है कि ऐसा कोई खण्ड नहीं है जिसमें स्तुति से लेकर वर्तमान समय तक इनकी रचना सतत् रूप से न हो रही हो।

शृङ्गार गीतिकाव्य :-

गीतिकाव्यों की परम्परा में शृङ्गार गीतिकाव्य का एक पुष्ट साहित्य है। इस परम्परा का आदि स्त्रोत बाल्मीकि रामायण और महाभारत में प्राप्त होता है। काव्य की यह विधा विरह जन्य पीड़ा से उत्पन्न होती है इस लिए इस प्रकार के काव्य के पदों में वेदना होती है, कसक होती है और याचना होती है। इसमें कोई भी प्रेमी यदि अपनी प्रेमिका से दूर हो जाता है और जब वह कामोद्दीपन के अनेक कारक देखता है तो वह उससे विरह वेदना का अनुभव करता है। फल यह प्राप्त होता है कि वह अपने मन के भावों को अपनी प्रिया तक पहुँचाने के लिए किसी पात्र को ढूढ़ता है जो उसके सन्देश को उसकी प्रिया तक पहुँचा दे।उसके सन्देशों में शृङ्गार होता है, भाव प्रवलता होती है, प्रणय होता है और विरह वेदना की छटपटाहट होती है। यह छटपटाहट इस प्रकार की होती है जिसमें वह चेतन-अचेतन का भेद भूल जाता है इसलिए वह ऐसा व्यवहार करता है जिस व्यवहार से कभी-कभी विस्मय जनक स्थिति उत्पन्न होती है। मेघदूत में कालिदास का प्रियपात्र यक्ष इसी तरह का व्यवहार करता है जिसमें वह मेघ के द्वारा अपनी प्रिया तक अपना सन्देश भेजना चाहता है। इस स्थिति में यह दिखाई देता है कि प्रेम की इस उद्दाम भावना में और विरह की व्याकुलता में सन्देश प्रेषक के मन और बुद्धि को विरह की चादर ढक लेती है। इन काव्यों में जो वर्णन होता है उसमें प्रकृति अपनी उद्दीपन अवस्था में रहती है और इसमें स्त्री हृदय की कोमलता, पवित्रता और उदारता का वर्णन रहता है। इसमें कवि प्रकृति के माध्यम से प्रेम का भावोद्रेक वर्णन करता है जिसमें रसिकता रहती है। प्रकृति कहीं वियोगी के रूप में और कहीं अनुरागी के रूप में रसिकता के साथ स्वयं को प्रस्तुत करती हुई दिखायी देती है। इस प्रकार की काव्य शृङ्खला में मेघदूत, ऋतुसंहार, अमरूक शतक, गीतगोविन्दम्, गीतराघव आदि काव्य रचनायें प्राप्त होती हैं।

---

1. प. दू., पृ0 8

शुद्ध गीतिकाव्य :-

शुद्ध गीतिकाव्य की परम्परा में कल्पना, भावना और सङ्गीत का सुन्दर समन्वय प्राप्त होता है। इस प्रकार का काव्य कवि के लिए पूर्ण रूप से स्वान्तः सुखाय होता है। इसमें कवि किसी विशेष विषय का निर्धारण नहीं करता और न ही इसमें कोई ऐसा विषय प्रस्तुत किया जाता है जिसका चयन काव्य की उत्कृष्टता के लिए किया गया हो। इस प्रकार के गीतिकाव्य में न कोई विशेष शृङ्गारिक भावना होती न किसी तरह का सन्देश अथवा नीति इसमें प्रस्तुत करने का लक्ष्य होता है। इसके वर्णन क्रम में कहीं भी कुछ भी आ सकता है और कभी भी स्वानुभूति के आनन्द का अनुभव करके स्वयं ही झूमने लगता है तथा झरने के प्रवाह की तरह प्रवाहित होने लगता है। इस प्रकार की गीतिकाव्य एक प्रकार से कवि के हृदय में आनन्द का अतिरेक उत्पन्न करने वाला होता है और इस अवस्था में कवि जो भी लिखता है वही गीति काव्य हो जाता है। जयदेव का गीतिकाव्य ऐसा ही गीतिकाव्य है जिसमें राधा और कृष्ण की प्रणय-लीलाओं का वर्णन सुन्दर ढ़ग से किया गया है। जयदेव ने इसमें जहाँ शृङ्गारिक भावना की उद्भावना की है वहीं उन्होंने इसमें भक्ति भाव का समावेश भी किया है। इस प्रकार के गीतिकाव्य के विषय में यह कहा जाता है कि इससे बढ़कर और कोई दूसरा ऐसा सरस काव्य नहीं है जो अपने माधुर्य से आनन्दित करता हो। इसीलिए गीतिगोविन्द में एक स्थान पर बसन्त ऋतु का वर्णन बड़े ही मधुर भाव में किया गया है। एक जगह राधा की सखी राधा को कृष्ण के साथ बिहार करने के लिए प्रेरित करती है। वहाँ पर जो वर्णन किया गया है वह मादकता का अनुपम उदाहरण है।[१]

---

1. **ललितलवंगलतापरिशीलनकोमलमलयसमीरे**
   मधुकरनिकरकरम्बितकोकिलकूजितकञ्जकुटीरे।।
   विहरति हरिरिह सरस-बसन्ते
   नृत्यति युवति जनेन समं सखि, विरहिजनस्य दूरन्ते।। गी.गो. 1-3

एक दूसरे स्थान पर कृष्ण और गोपियों के रासविहार का भी वर्णन है। वहाँ पर लौकिक दृष्टि से कृष्ण अपनी प्रेमिकाओं के साथ जिस रूप में विहार करते हैं उसमें वे किसी का आलिंगन करते हैं, किसी का चुम्बन करते हैं, किसी के प्रति दृष्टि निक्षेप करते हैं और किसी का पीछा करते हैं। इस वर्णन में कवि ने जैसी गेयात्मकता और लयात्मकता का प्रयोग किया है वह भी अद्‌भुत है। इस वर्णन में जयदेव की वाणी का रस उनका माधुर्य पूर्ण सङ्गीत, उनकी सुकुमरता और उसकी मनोज्ञता देखते ही बनती है।[१]

सन्देश गीतिकाव्य :-

सन्देश गीतिकाव्य की परम्परा भी एक लम्बी परम्परा है। इस काव्य परम्परा को दूतकाव्य परम्परा इसलिए कहा जाता है क्योंकि इसमें कोई एक पात्र अपना सन्देश दूसरे पात्र के पास प्रेषित करता है। यह पात्र कोई भी हो सकता है चाहे वह स्त्री हो अथवा पुरुष पात्र हो। इस काव्य में ज्ञेय पदों का प्रयोग होता है और इसका जो सन्देश होता है वह काव्यात्मक होता है इसलिए यह काव्य सन्देश काव्य की कोटि में आता है। प्रतीत यह होता है कि इसकी परम्परा वैदिक काल से चली आ रही है क्योंकि ऋग्वेद में एक ऐसा सङ्कृत है जिसमें रात्रि स्त्री का कार्य सम्पादित करती है। रात्रि भी प्रकृति का एक कारक है, जड़ है किन्तु इसके द्वारा दौत्य कार्य के सम्पादन की परम्परा प्रचीन परम्परा है। वाल्मीकि रामायण में हम यह देखते हैं कि वहाँ पर सन्देश ले जाने वालों में हनुमान अथवा अङ्गदादि पात्र हैं। महाभारत में यह कार्य श्रीकृष्ण ने सम्पादित किया है। महाकवि कालिदास ने सम्भवतः मेघदूत लिखने की विचारधारा वाल्मीकि रामायण से प्रेरणा प्रदत्त कर की गयी होगी।

---

1. **चन्दनचर्चितनीलकलेवरपीतवसनवनमाली।**
   केलिचलन्मणिकुण्डलमण्डितगण्डयुगः स्मितशाली।।
   श्लिष्यति कामपि चुम्बति कामपि कामपि रमयति रामाम्।
   पश्यति सस्मितचारूतरामपरामनुगच्छति वामाम्।। गीता०गो० 1-4

इसके बाद दूतकाव्यों की परम्परा में अनेक दूतकाव्य हैं जैसे कि पवनदूत, मनोदूत उद्धवदूत, हंसदूत आदि।

कुछ समीक्षाकारों ने सन्देश गीतिकाव्य को तीन प्रकार के विभागों में बाँटा है वे यह लिखते हैं कि एक प्रकार के दूतकाव्य वे हैं जो रामकथा का आश्रय लेकर लिखे गये हैं। जैसे कि हंसदूत, चन्द्रदूत, हनुमत आदि। दूसरे प्रकार के गीतिकाव्य वे हैं जो कृष्णकथा का आश्रय लेकर लिखे गये हैं। इस प्रकार के गीतिकाव्यों में उद्धवदूत पान्थदूत और पदान्तदूत की गणना की जा सकती है। तीसरे प्रकार के वे दूत काव्य हैं जो आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रयोग के रूप में लिए गये हैं जैसे कि चेतोदूत अथवा इन्दुदूत।

उदेशात्मक काव्य :-

भारतीय परम्परा में जो वैचारिक विशेषता रही है उसके अनुसार सदा ही यह विचार किया जाता रहा है कि मनुष्य इस संसार में किस निमित्त से आया है और इसके जीवन का लक्ष्य क्या है। इस विचार में यह देखा गया कि मनुष्य के जीवन का लक्ष्य बार-बार जन्म लेना, अपने उदर की पूर्ति करना और अपने परिवार तक सीमित रहना ही लक्ष्य नहीं है। मनुष्य जीवन का लक्ष्य है इस लोक में सर्वकुलाय प्रयत्न करना और पारलौकिक सत्ता के अन्वेषण के साथ-साथ नैतिक जीवन। इसी दृष्टि से संस्कृत साहित्य में जो काव्य संरचना हुयी उसमें मनुष्य के लिए उपदेश का स्थान पर्याप्त रूप से समाहित रहा। नीतिकाव्य परम्परा में भी उदेशात्मक शैली का आलम्बन लिया गया है और नीतिकाव्यों में अनेक ऐसे कवि हैं जिन्होंने उपदेशात्मक शैली का आश्रय लेकर अनेक ग्रन्थों की रचना की। इन उपदेशात्मक गीतिकाव्यों में मनुष्य के जीवन के लिए विविध प्रकार के उपदेश दिये गये जिनमें धर्म, दर्शन, आदर्श आचरण और कर्तव्यों का कथन किया गया। इन उपदेश काव्यों में यह भी संकेत हुआ कि आत्मा का स्वरूप क्या है उसकी प्राप्ति किस रूप में हो सकती है और प्राप्त करने के लिए मनुष्य को अपने जीवन में किस प्रकार का आचरण करना चाहिए; क्योंकि यह देश प्राचीनकाल से ही आध्यात्मिक विचारधारा का देश रहा है इसलिए आत्मा की प्राप्ति में नैतिक महत्व को रेखांकित करते हुए गीतिकाव्यों में उपदेशों का संकेत है।

इन गीतिकाव्यों में न केवल मनुष्य को मनुष्य के साथ व्यवहार करने की दृष्टि दी गयी है। अपितु मनुष्य पशुपक्षियों तथा प्रकृति के साथ कैसा व्यवहार करे इसका भी उपदेश किया गया है। इन उपदेशों में यह सङ्केत किया गया है कि मनुष्य के साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार करे वहीं वह पशु पक्षियों के साथ भी प्रेम का व्यवहार करे यह जीवन के लिए श्रेयस्कर है। वसुधा व्यक्ति के लिए कुटुम्ब है यह विचार 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के माध्यम से बहुमत है।

सूक्ति गीतिकाव्य :-

खण्डकाव्यों की परम्परा में सूक्ति गीतिकाव्य का एक लम्बा इतिहास है। कहना तो अधिक मात्रा में यह संङ्गत होगा कि संस्कृत के गीतिकाव्यों में सूक्तियों का जैसा प्रयोग किया गया है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। छोटे-छोटे वाक्यों के माध्यम से गम्भीर सिद्धान्तों का कथन गीतिकाव्यों की विशेषता है यद्यपि संस्कृत वाङ्मय के सभी काव्य-विधाओं में सूक्तियों का पर्याप्त मात्रा में समावेश किया गया है किन्तु जैसा सूक्ति प्रयोग गीतिकाव्यों में है वैसा अन्यत्र दुलर्भ है। सूक्तियों के सन्दर्भ में तो कालिदास ऐसे सिद्धहस्त कवि हैं जिन्होंने अपने गीतिकाव्य मेघदूत में उत्तम कोटि की सूक्तियों का प्रयोग किया है। यक्षिणी जब अपने प्रिय का सन्देश पा जाती है तो वह परम प्रसन्नता का अनुभव करती है। इसमें कालिदास का यह दृष्टिकोंण है कि यक्ष ने मेघ जैसे श्रेष्ठ जन का सहयोग लिया। अर्थात् उत्तम जनों से की गई अभीष्ट की प्रार्थना अवश्य ही सिद्ध होती है।[१]

---

1. **तं सन्देशं जलधरवरों दिव्यवाचाऽऽचचक्षे**
   प्राणांस्तस्या जनहितरतो रक्षितुं यक्षवध्वाः।
   प्राप्योदन्तप्रभुदितमनाः साऽपि तस्थौ स्वभर्तुः
   केषां न स्यादभिमतफला प्रार्थना ह्युत्तमेषु।। मे.दू.(उ.) परिशिष्ठ, 3

इसी तरह से कालिदास एक अन्य स्थान पर मनुष्य के जीवन की दशा का वर्णन करते हैं जिसमें वे मनुष्य के भाग्य को पहिए के चक्र की भाँति निरूपित करते हैं और यह लिखते हैं कि किसी भी व्यक्ति की जीवन दशा शाश्वत् रूप से एक जैसी नहीं रहती है। यदि कभी किसी का जीवन समय आपद ग्रस्त है तो कभी न कभी उसका जीवन सम्पन्न युक्त भी होता है। उसके जीवन का चलने वाला यह क्रम निरन्तर उसी तरह से घूमता रहता है जैसे रथ के पहिए का चक्र चलता है। इस सूक्ति को कालिदास ने अपनी विशेष शैली में प्रस्तुत किया है।[१]

एक स्थान पर कालिदास प्रकृति का अवलम्बन लेकर मेघ को सन्देश देने के लिय अल्कापुरी का मार्ग बताते हैं और यह कहते हैं कि रास्ते में तुम नर्मदा नदी के जल का पान अवश्य करना, नदियों में नर्मदा महत्वपूर्ण नदी है और उसमें जंगली हाथियों के अवलोकन से मदयुक्त जल भरा हुआ है। इस जल से सुवासित जामुनों के निकंजों ने रोका हुआ है। जब तुम उस जल को पिओगे तो तुम गुरु अर्थात् गम्भीर हो जाओगे और इस कारण से तुममें गुरुता आ जायेगी क्योंकि जो पूर्ण होते हैं, वे गुरुता के वाहक बनते हैं। इसके विपरीत जो अपूर्ण होते हैं, वे सदा अपनी लघुता का प्रदर्शित करते हैं।[२] यह सूक्ति जहाँ प्रकृति को लक्ष्य कर लिखी गयी है और मेघ के सन्दर्भ में कही गयी है यह मनुष्य के लिए एक ऐसा सङ्केत देती है जो उसकी गुरुता और लघुता को सङ्केतित करता है। जो व्यक्ति सद्वृत्तियों से पूर्ण होता है वही गौरवशाली होता है जिसमें सद्वृत्तियाँ नहीं होती वह सदा सर्वदा लघु ही कहा जाता है।

---

1. नन्वात्मानं बहु विगणयन्नात्मनैवावलम्बे,
   तत्कल्याणि! त्वमपि मितरां मा गमः कातरत्वम्।
   कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा
   नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण।। मे.दू. (उ.) 49
2. अन्तःसारं धन! तुलयितं नानिलः राक्ष्यति त्वां रिक्तः सर्वो भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय।। मे.दू. (पूर्व.) 20

गीतिकाव्य का उद्भव एवं विकास :-

यह तथ्य सर्वमान्य रूप से स्वीकृत है कि गीतिकाव्य का प्रारम्भ ऋग्वैदिक काल से ही हो चुका था। ऋग्वेद में अनेक ऐसे सूक्त देखने को मिलते हैं जिनमें गेयता प्राप्त है और जो विविध देवताओं की स्तुतियों के लिए प्रयुक्त किये गये हैं। इनमें उषस्, विष्णु, इन्द्र, वरुण, सविता, अदिति आदि हैं। इन सूक्तों में मनुष्य की भाव विह्वलता का जैसा वर्णन दिखायी देता है वैसा अन्यत्र कम ही सुलभ होता है। हम जब वेदों में गीतिकाव्यों का स्वरूप देखते हैं तो ऋषियों ने वहीं पर जिन विविध ऋचाओं को देव स्तुतियों के रूप में प्रस्तुत किया है वहाँ पर वे ऋचायें स्वयं ही सङ्गीतमयी और कवितामयी हो गयी हैं। उन ऋचाओं की भाषा सरल, मधुर और ललितपूर्ण हैं। उन ऋचाओं में संवेदना का स्तर उच्च हैं और काव्य की श्रेष्ठता भी वहाँ पर स्थापित है। वैदिक साहित्य के उपरान्त वाल्मीकि रामायण और महाभारत में अनेक ऐसे स्थल हैं जहाँ गीतिकाव्यों की भावात्मक उपस्थिति को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। वाल्मीकि रामायण का प्रथम श्लोक जो कवि के शोक को व्यक्त करता है अपनी रागात्मकता से गीतिकाव्य के सभी प्रकार के गुणों का संवाहक है। महाभारत में श्रीकृष्ण जिस प्रकार से दूत का कार्य करते हैं वह भी कवि की संवेदना को प्रकट करता है। महाभारत में ही हंसदूत और नल-दम्पत्ती की कथा में भी दूत प्रेषणम् का सङ्केत है। व्याकरणकार पाणिनि ने यद्यपि गीतिकाव्य के रूप में किसी काव्य विशेष की रचना तो प्रामाणिक रूप से नहीं की किन्तु उनके द्वारा रचित जो स्फुट काव्य प्राप्त होते हैं उनमें भी गीतात्मकता की दृष्टि दिखायी देती है। इसके पश्चात् काव्यकारों में कालिदास का एक ऐसा नाम है जिसकी ख्याति न केवल गीतिकाव्यकार के रूप में है अपितु अन्य काव्य विधाओं में भी इनकी कोई सानी नहीं है।

कालिदास :-

कालिदास जिन गीतिकाव्यों की प्रस्तुति करते हैं उनमें मेघदूत का महत्व सर्वाधिक रूप में है। यद्यपि इनका दूसरा गीतिकाव्य ऋतुसंहार भी है किन्तु मेघदूत जैसी विशिष्टता उसमें नहीं है। मेघदूत में भावों की गरिमा, विचारों की महिमा, कल्पना की कमनीयता, भाषा की प्राञ्जलता, अनुभूतियों की संवेदनशीलता, भाषा की मधुरता, शृंगार की सात्विकता, अलंकारों की छटा और मन्दाक्रान्ता का माधुर्य लय देखते ही बनता है। यह कालिदास की विशेषज्ञता है कि वे भाषा में प्रसाद और माधुर्य गुण के साथ सङ्गीतात्मक का पुट भी देते हैं। एक स्थान पर मेघ के साथ पवन के चलने का और चातक के ध्वनि करने का जैसा सङ्गीतात्मक वर्णन किया गया है वह अद्‌भुत और अनूठा है।[१] कालिदास भावों की उत्कृष्टता के समायोजन में अद्वितीय हैं। एक स्थान पर वे यह चित्रण करते हैं कि प्रियतमा के वियोग में व्याकुल यक्ष उसका चित्र बनाकर चरणों में लेटा हुआ स्वयं को चित्रित करना चाहता है और मधुर मिलन की कामना करता है किन्तु ऐसा इसलिए नहीं हो पाता क्योंकि आँखों में आँसुओं के भर जाने से चित्र अपूर्ण रह जाता है। इसे कालिदास ने जिस संवेदना से चित्रित किया है वह मनोरम है।[२]

मेघदूत का रस विप्रलम्भ शृङ्गार रस है। जो यह कहते हैं कि इसमें विप्रलम्ब शृङ्गार इतना अधिक करुणोद्रेक वाला हो गया है इसलिए यह शोकगीत क्या है।[३] वे उचित रीति से अपना मत व्यक्त नहीं करते। भारतीय विद्वानों का इस सन्दर्भ में यह मत है कि मेघदूत के विप्रलम्भ शृङ्गार को शोकगीत कहना इसलिए उचित नहीं है क्यों कि शोकगीत मृत व्यक्ति कें लिए होता है। यक्षिणी जीवित है।[४]

---

1. मन्दं–मंन्दं बुदति पवनश्चानुकूलो यथा त्वां
   वामश्चायं नदति मधुरं चातकस्ते सगन्धा। मे.दू. (पू.) 10
2. त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैः शिलायामात्मानं
   ते चरणपतितं यावदिच्छामि कर्तुम्।
   अस्तैस्तावन्मुहुरूपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे।
   क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते संगमं नौ कृतान्तः।। मे. दू. (उ.) 47
3. हि० सं० लि० ,पृ० 67
4. सं. सा. स. इ., पृ० 533

भर्तृहरि :-

शृङ्गार शतक, वैराग्य शतक और नीतिशतक के रचियता भर्तृहरि के स्थिति काल के विषय में मत-भिन्नता है। कहा जाता है कि चीनी यात्री इत्सिङ्ग ने जो उल्लेख किया है उसके आधार पर ६५१ ईसवीय के व्याकरणकार भर्तृहरि सम्भवतः शतक त्रय के लेखक थे। उस चीनी यात्री ने भर्तृहरि को बौद्ध कहा है।[१] जबकि भारतीय विद्वानों का यह कहना है कि भर्तृहरि वेदान्तोक्त ब्रह्म के उपासक थे। दूसरा तथ्य यह है कि इनके तीनों शतकों में कोई भी ऐसा शतक नहीं है जिसमें प्राप्त सङ्केत के आधार पर इन्हें बौद्ध कहा जा सकता है।[२] कुछ विद्वानों ने हूणों को परास्त करने वाले विक्रमादित्य के भ्राता के रूप में भर्तृहरि का परिचय दिया है।[३] इन सभी विवरणों के आधार पर भर्तृहरि को त्रयशतक का आचार्य कहा गया है।

आचार्य भर्तृहरि प्रसाद और माधुर्य शैली के आचार्य हैं। इनकी भाषा सरल है, सुबोध है और सुनने में आनन्ददायक है। इनके मुक्तक स्वतन्त्र हैं और प्रत्येक मुक्तक का अर्थ अपने आप में परिपूर्ण है। इनकी भाषा का लालित्य, भावों की गहराई, रसों का सुन्दर समावेश, अलंकारों की रमणीय छटा इनके पद्यों को मनोहारी बना देती है। इन्होंने अपने शतकों में आचार, शिक्षा, नीति, शिक्षा, कर्तव्य और अकर्तव्य का वर्णन, सज्जन प्रशंसा, दुर्जन निन्दा, कर्मफल की प्रधानता, स्त्रियों की रमणीयता श्रृङ्गार रस की सर्वप्रियता, संसार की नश्वरता और जीवन की क्षणभङ्गता प्राप्त होती है। ये इस प्रकार के भाव व्यक्त करते हैं जिनसे व्यक्ति को जीवन जीने का कौशल प्राप्त होता है।[४]

---

1. सं. सा. स. इ., पृ0 215
2. सं. सा. स. इ., पृ0 541
3. सं. सा. रू. , पृ0 320
4. गुणवदगुणवद् वा कुर्वता कार्यमादौ परिणतिरवधार्या यत्नतः पण्डितेन।
   अतिरभसकृतानां कर्मणामाविपन्नेर्भवति हृदयदाही शल्यतुल्यो विपाकः।। नी.श. 100

आचार्य भर्तृहरि ने जहाँ नीतिशतक में अपनी काव्य प्रतिभा का मार्मिक अनुभूति का और नैतिक कर्तव्यों का कथन किया है वहीं वे शृंङ्गार वर्णन में अपनी ललित भावनाओं का प्रस्तुतीकरण अपूर्व रीति से करते हैं। वैराग्य शतक में उनके द्वारा प्रस्तुत भाव मनोरम हैं और वे भोगों की जैसे निस्सारता व्यक्त करते हैं वह भी दर्शनीय है। नीतिशतक में जहाँ उन्होंने उत्तम जनों को रेखाङ्कित करते हुए यह लिखा है कि जो जन अपना कार्य आरम्भ करने के पश्चात् किसी भी स्थिति में उसका परित्याग नहीं करते वे ही उत्तम जन होते हैं।[1] इसी तरह का एक कथन उनका और भी चमत्कृत करता है जिसमें वे राजनीति की निर्लज्जता का वर्णन करते हैं। वे राजनीति को वाराङ्गना अथवा वेश्या की तरह बताते हैं। और यह संकेत करते हैं कि जिस प्रकार से समय-समय पर वाराङ्गना अनेक रूप धारण कर लेती है। उसी तरह से राजनीति भी अनेक रूपों वाली होती है।[2]

भर्तृहरि का शृंङ्गार शतक ऐसा विचित्र है जिसमें वे कामिनि की महत्ता को रेखाङ्कित करते हैं और यह लिखते हैं कि कामिनि ही अमृत है, उसका स्मित, हास्य, लज्जा, कटाक्ष, ईर्ष्या, कलह और हाव-भाव ऐसे हैं जो किसी भी पुरुष के लिए बन्धनकारी हो जाते हैं। इसके लिए वे सङ्केत करते हैं कि किसी भी पुरुष को किसी भी स्थिति में कामिनि के हाव-भावों की ओर आकर्षित नहीं होना चाहिए। यदि ऐसा होता है तो पुरुष एक ऐसे बन्धन में बँध जाता है जिससे मुक्त होना सहज नहीं है।[3]

---

1. प्रारब्ध मुक्तं जनाः न परित्यजन्ति। नी० श० 27
2. वारांङ्गनेव नृपनीतिरनेकरूपा। वहीं, 47
3. हितेन भावने च लज्जया भिया, पराडगमुखैरर्धकटाक्षवीक्षणैः।
   वचोभिरीर्ष्याकल्हेन लीलया , समस्तभावैः खलु बन्धनं स्त्रियः।। श्रृ०श० 8

भर्तृहरि के विषय में यह किवदनती है कि वे नीतिवान् राजा थे और अपनी पत्नी को बहुत अधिक प्रेम करते थे। एक बार ऐसी घटना हुयी जिससे उन्हें यह ज्ञात हुआ कि उनकी पत्नी उनके प्रति पूरी तरह से समर्पित नहीं हैं तब उन्होंने सभी कुछ त्याग दिया और वैराग्य का आश्रय लिया। इसका सङ्केत उन्होंने अपने आप को तिरस्कृत कर, पत्नी की निन्दा कर, पत्नी के प्रिय की आलोचना कर और कामदेव की भर्त्सना करके सङ्केत किया है।[१]

इस घटना के बाद उन्हें यह प्रतीत हुआ कि वैराग्य ही जीवन का वह मार्ग है जो व्यक्ति को परम कल्याण की ओर ले जाता है। यहाँ जो कुछ भी प्राप्त करने योग्य है वह केवल तृष्णा का विषय है। तृष्णा में फँसा हुआ व्यक्ति सभी कुछ पाना चाहता है।[२]

वे जब संसार के भोगों का यथार्थ दर्शन कराते हैं तो यह लिखते हैं कि संसार के भोग कभी भी पूरी तरह से हम भोग नहीं सकते। इसी तरह से काल कहीं जा नहीं रहा, उनका यह अनुभव है कि हम ही भोगों के द्वारा भोगे जा रहे हैं और इसी तरह काल व्यतीत नहीं हो रहा अपितु हम व्यतीत हो रहे हैं।[३]

---

1. यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता साऽप्यन्यमिच्छति जनं स जनोऽन्यसक्तः।
   अस्मत्कृते च परितुष्यति काचिदन्या धिक् तां च तं च मदनं च इमां च मां च।। नी.श.2
2. आशा नाम नदी मनोरथजला तृष्णातरङ्गाकुला
   रागग्राहवती वितर्क बिहगा धैर्य द्रुमध्वंसिनी।
   मोहावर्तसुदुस्तराऽतिगहना प्रोत्तुङ्गचिन्तातटी
   तस्याः पारगता विशुद्धेमनसो नन्दन्ति योगीश्वराः।। वै.श.36
3. भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्तास्तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः।
   कालो न यातो वयमेव यातास्तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः।। वै.श.3–36

अमरुक :-

गीतिकार अमरुक ने अमरुक शतक की रचना की है। इन्होंने इस रचना के माध्यम से गीतिकाव्य को आगे बढ़ाया है। किंवदन्ती इस प्रकार की है कि अमरुक ने राज्यपद पर आसीन होने के कारण राज्य शासन विधिपूर्वक किया था और आचार्य शङ्कर जब कुमारिलभट्ट की पत्नी से परास्त हुए थे तो उन्होंने अपनी आत्मा का परिवर्तन किया था। आचार्य शङ्कर ने जिस शरीर में स्वयं की आत्मा को प्रविष्ट कराया था वह शरीर सम्भवतः राजा अमरुक का ही था। और अमरुक शतक की रचना सम्भवतः अमरुक के शरीर में प्रवृष्ट होकर आचार्य शङ्कर ने ही की थी।[1]

अठारहवीं शताब्दी के स्थिति काल वाले आचार्य वामन ने अमरुक के कुछ श्लोकों को उद्धृत किया है इससे यह अनुमान होता है कि अमरुक का जन्म आठवीं शताब्दी के बाद का नहीं हो सकता। गीतिकार अमरुक ने अमरुक शतक की रचना में मुक्त छन्दों का प्रयोग किया है। छन्दों में कामशास्त्र का ऐसा विवेचन किया गया है जिससे यह लगता है कि यह शतक नायक-नायिकाओं के भेद वर्णन के लिए लिखी गयी हैं। इसमें जो नायिकाओं के सम्बन्ध में लिखा गया है उसमें उनका मान, अभिसार, ईर्ष्या आदि का वर्णन विस्तार पूर्वक है। युवा अवस्था का मतवाला भावों क उतार-चढ़ाव आँसू बहाती हुयी खण्डिता नायिका, घनघोर घटा वाली भय प्रदर्शित करती हुयी काली रात्रि और अभिसारिका का अभिसार जिस भावपूर्ण रीति से इस शतक में प्रतिपादित है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। अमरुक शतक में कवि अमरुक श्रृङ्गार की विविध भवनाओं को सूक्ष्मता के साथ प्रस्तुत करता है वह जब किसी भी नायक-नायिका के मनोभावों को प्रदर्शित करता है तो न केवल तदनुकूल शब्दों का चयन करता है अपितु उसी के अनुरूप भावों की अभिव्यक्ति भी करता है। इस प्रकार से अमरुक शतक की भाषा जहाँ एक ओर भावों के अनुकूल होती है वहीं दूसरी ओर कल्पना का जो स्वरूप इसमें देखने को मिलता है।

---

1. सं.सा.इ.(शा0), पृ0 194

वह भी अनूठा होता है और आनन्ददायी होता है। काव्य प्रकाशकार ने एक स्थान पर अमरुक शतक के एक श्लोक को उद्धृत किया है। वह श्लोक में वर्णन है कि एक प्रियतमा द्वारा प्रियतम के समीप भेजी गयी दूती वापस आ जाती है। उसे इसलिय भेजा गया था कि वह प्रियतम और प्रियतमा के मिलने में सहायिका बने। वह दूती दिये गये अपने कार्य को न करके अन्यथा आचरण करती है। इस स्थिति में वह दूती से क्रोधित होती है और कहती है कि तू उस प्रियतम के पास कहाँ गयी थी। तू तो बावली नहाने गयी थी, देख तेरे वक्षस्थल का चन्दन छूटा हुआ है, अधरों की लालिमा धुली हुयी है आंखों में काजल भी नहीं रह गया और तेरे शरीर में कपकपी छूट रही है। तू भला हमारे हृदय की पीड़ा को क्या समझे।[1] इस व्यंग्य कथन में जहाँ अमरुकशतककार ने भावों की व्यञ्ना को धरातल दिया है वहीं वे अपनी भाषा के माध्यम से एक विशिष्ट रचना को प्रस्तुत कर पाते हैं।

जयदेव :-

आचार्य जयदेव बङ्गाल के रहने वाले थे। इनके पिता भोजदेव और इनकी माता रामादेवी अथवा राधादेवी थीं। इनकी पत्नी के नाम का उल्लेख भी यत्र-तत्र मिलता है और वह नाम है पद्मावती। वे कलावती थीं और सङ्गीत मर्मज्ञा होकर जयदेव के पदों का आधार बनाकर नृत्य किया करती थीं। इनका एक मात्र गीतिकाव्य है जिसे गीतिगोविन्द के नाम से जाना जाता है। इस गीतिकाव्य में १२ सर्ग हैं जिसमें श्रीकृष्ण और राधा के भावपूर्ण काम-कलाओं का वर्णन है। इसमें श्रीकृष्ण का गोपियों के साथ रासलीला करना वर्णित है। राधा का विषाद वर्णन वर्णित है, राधा का श्रीकृष्ण के प्रति व्याकुलता, उनकी उत्कृष्टता, उनका विरह सन्ताप, उनका क्रोध वर्णन और राधा तथा श्रीकृष्ण का मिलन वर्णित है।

---

1. निःशेषच्युतचन्दंनं स्तनपटं निर्मृष्टरागोऽधरः
नेत्रे दूरमनञ्जने पुलकिता तन्वी तवेयं तनुः।
मिथ्यावादिनि दूति बान्धवजनस्याज्ञातपीडागमे।
वादीं स्मातुमितो गतास्ि न पुनस्मस्याधमस्यान्तिकम्।।
का.प्र.से उद्धृत, पृ0 30

गीतिकार जयदेव कोमलकान्त पदावली के कवि हैं। गद्य-पद्य और गीति तीनों को मिलाकर इन्होंने जो रचना की है वह संस्कृत साहित्य की एक नवीनतम विधा है। इनके गीतों में सङ्गीतात्मकता है, हृदयग्राहिता है कोमलता है, मनोरञ्जकता है और रस का आकर्षण है। कवि की भाषा का ऐसा आकर्षण है कि जो कोई भी इनके गीतों को एक बार सुन लेता है वह मन्त्र मुग्ध हो जाता है।

राधा और कृष्ण को लेकर जो विषय वस्तु प्रस्तुत की है वह शृगारिक है अथव भक्ति भाव परक इसका विवेचन करना कठिन है। राधा-कृष्ण की काम पीड़ाओं का वर्णन जैसा इसमें किया गया है वैसा वर्णन केवल शृंगार में ही किया जा सकता है और इसलिए यह कहा जाता है कि इनकी यह रचना शृंगार की रचना है। इसमें अभिसार का वर्णन, कामिनि के नखसिख का वर्णन उसके शारीरिक सौन्दर्य का चित्रण, उद्दाम काम वासना, पर स्त्री गमन आदि ऐसे सन्दर्भ हैं जो इस रचना को शृंगार का आधार देते हैं और यह निर्धारित करते हैं कि जय देव का गीतिगोविन्द शृंगार की रचना है। दूसरी ओर इसमें राधा और कृष्ण के जिस समर्पण भाव को व्यक्त किया है और इस भाव को जीव तथा ब्रह्म के सम्बन्ध से जैसा जोड़ा गया है उससे यह लगता है कि यह भक्ति परक रचना है। बंगाल की भूमि पर रचित यह रचना देव मन्दिरों में आयोजित होने वाले विविध उत्सवों के अवसर पर रची गयी है। इसलिए इसमें भक्ति के अंकुर खोज लेना और इसे आध्यात्मिक रचना कहना पूरी तरह से अनुपयुक्त नहीं है। कृष्ण रूपी ब्रह्म में जीव रूपी गोपिकायें उससे मिलने के लिए जिस रूप में छटपटाती हैं, उसकी व्याख्या लौकिक रूप में नहीं की जा सकती। इस प्रकार के वर्णन में जयदेव का गीतिगोविन्द भक्ति रस से सरोवार एक ऐसी रचना प्रतीत होती है जो अपने आप में अनूठी और अद्वितीय है। विवेचना चाहे जैसी की जाये जयदेव द्वारा रचित गीतिगोविन्द ऐसी रचना है जो अपनी आनन्द माधुरी से सभी को आह्लादित करती है।

जयदेव का गीतिगोविन्द कलात्मक सौन्दर्य का एक अनुपम काव्य ग्रन्थ है, गीतिगोविन्दकार ही सम्भवतः ऐसे संस्कृत कवि हैं जिन्होंने अपनी कविताओं में संगीतात्मकता का समन्वय स्थापित किया है। इनके काव्य में काव्य सौन्दर्य, पद माधुर्य, शब्द लालित्य, रागात्मकता का ऐसा संयोग है कि उनकी कविता में नर्तकी के नूपुरों की झंकार है, अभिनेत्री की कोमलवाणी है वीणा का नाद और तरुणी का लास्य है। इनके काव्य में हरिकीर्तन के साथ-साथ रासलीला की रमणीयता, कोमलकान्त पदावली की मधुरिमा और सरस्वती का कल-कल निनाद भी है। इन सभी विशेषताओं को इन उदाहरणों में देख सकते हैं।[१]

कवि की यह विशेषता सभी जगह देखने का मिलती है जिसमें वे एक ओर श्रृंगार के प्रस्तुतीकरण में सक्षम दिखायी देते हैं तो दूसरी ओर भक्ति के प्रस्तुतीकरण में उतने ही सक्षम प्रतीत होते हैं। जब वे कामिनि के राग को रेखांकित करते हैं तो उस रेखांकन में ऐसे शब्दों का चयन करते हैं जो शब्द राग-रंग की अनुपम धारा बिखरने में सक्षम हैं जैसा कि द्रष्टव्य है।[२] जहाँ वे भक्ति का वर्णन करते हैं वहाँ श्रीकृष्ण के विविध अवतारों का चित्रण करने में कुशलता का प्रदर्शन करते हैं। एक स्थान पर कृष्ण अनुपमेय कार्य का निरूपण करते हुए माधुर्यमयी रचना प्रस्तुत करते हैं।[३]

---

1. साध्वी माध्वी कचिन्ता न भवति भवतः शर्करे कर्कशासि
   द्राक्षे द्रक्ष्यन्ति के त्वाममृत मृतमसि क्षीरं नीरं रसस्ते।
   माकन्द कन्द कान्ताधर धर न तुला गच्छ यच्छन्ति भावं
   यावच्छृङ्गारसारं शुभमिव जयदेवस्य वैदग्ध्यवाचः।। गी.गो. 12-12
2. श्लिष्यति कामपि चुम्बति कामपि कामपि रमयति रामाम्।
   पश्यति सस्मित चारूतरामपरामनुगच्छति वामाम्।। गी. गो. 1-4
3. वेदानुद्धरते जगन्निबहते भूगोलमुद्बिभ्रेत
   दैत्यान् दारयते बलिं छलयते क्षत्रक्षयं कुर्वते।
   पौलस्त्यं जयते हलं कलयते कारूण्यमातन्वते
   म्लेच्छान् मूर्च्छयते दशा कृतिकृते कृष्णाय तुभ्यं नमः।।गी. गो. 1-12

पण्डितराज जगन्नाथ :-

पण्डितराज जगन्नाथ तैलङ्ग ब्राह्मण थे। पण्डितराज की उपाधि इन्हें शाहजहाँ के दरबार में मिली थी। शाहजहाँ के समकालिक होने के कारण इन्हें सत्ररहवीं शताब्दी का आचार्य कहा जाता है। इनके विषय में यह किंवदन्ती है कि इन्होंने लवंगी नाम की एक युवती पर मुग्ध होकर उसे ही मांग लिया था। इन्होंने जिन ग्रन्थों में पीयूष लहरी, अमृत लहरी, सुधा लहरी, करूणा लहरी, लक्ष्मी लहरी और भामिनी विलास प्रसिद्ध हैं। पीयूष लहरी को गंगा लहरी भी कहते हैं। इसमें गंगा के ५२ पद लिखे गये हैं। अमृत लहरी में यमुना की स्तुति के दस पद रचित हैं। सुधा लहरी में ३० पद हैं जो सूर्य की स्तुति में रचित हैं। करूणा लहरी का नाम विष्णु लहरी भी है और इसमें विष्णु के स्तवन के ६० पद रचित हैं। लक्ष्मी लहरी में लक्ष्मी की स्तुति के ४१ पद संकलित हैं। इन सभी रचनाओं में आचार्य का शब्द कौशल उनकी भाव भंगिमा और पदों की ज्ञेयता आनन्द देने वाली है। वे अपनी कविता में जिन गुणों का समावेश करते हैं उन गुणों में दोषराहित्य, गुणवत्ता, रस भावपूर्णता, अलंकारमयता और श्रुति सुखद भाव प्राप्त होते हैं। एक वर्णन यहाँ पर ऐसा है जिसमें यह वर्णन किया गया है कि हे कामिनि भौंरे तेरे मन्द मुस्कान भरे मुख को कमल समझकर प्रसन्नता मना रहे हैं और चकोर उसी मुख को चन्द्रमा समझकर अपनी चोचों को चिरपर्यन्त हिलाते हैं।[1] इस वर्णन में कवि द्वारा प्रस्तुत भाव प्रवणता और वर्णन लालित्य स्वयं ही अपूर्व रूप में दिखायी देता है।

---

1. **आलोक्य सुन्दरि मुखं तव मन्दहासं**
   नन्दन्त्यमन्दमर विन्दविधया मिलिन्दाः।
   किञ्चिचासितताक्षि मुगलांछनसम्भ्रमेण
   चञ्चूपुटं चटुलयन्ति चिरं चकोराः।। सं. सा.रू., पृ0 202 से उद्धृत

विल्हण :-

कवि विल्हण का जन्म ग्यारहवीं शताब्दी में हुआ था। इनके पिता का नाम ज्येष्ठ कलश और माता का नाम नागादेवी था। ये मूल रूप से कश्मीर के निवासी थे। इन्होंने अनेक रचनायें की हैं जिसमें नाटक भी हैं। एक किंवदन्ती इस प्रकार की है कि विल्हण का प्रेम किसी राजकुमारी से था और इसके लिए इन्हें प्राणदण्ड प्राप्त हुआ था। उस राजकुमारी की विरह वेदना में जो काव्य ग्रन्थ लिखा था वह सरस और भावपूर्ण था। कुछ पाश्चात्य विद्वान् इस विल्हण की प्रेमकथा किंवदन्ती को सत्य नहीं मानते। वे यह मत व्यक्त करते हैं कि किंवदन्ती केवल किंवदन्ती मात्र है। इनकी एक गीतिरचना चौरपञ्चाशिका सरस भाषा में रचित है और इसमें प्रणय के भावों को माधुर्यमय कल्पना के साथ प्रस्तुत किया गया है। नायिका और नायक का आकस्मिक मिलन उसमें नायिका का कम्पन, उसकी लज्जा, उसकी कामुकता और उसका विलास जिस रूप में दृष्टिगत होता है वह इस गीतिकाव्य की मनोहारी छटा है। इसी भाव भंगिना के साथ रचित इनकी रचना काव्य जगत् में सराही गयी है।

घटकर्पर :-

संस्कृत–परम्परा में कवियों की एक ऐसी परम्परा है जो विक्रमादित्य के नौ रत्नों में गिने जाते थे। इनमें घटकर्पर का नाम भी मुख्य रूप से लिया जाता है और यह कहा जाता है कि विक्रमादित्य के समकालिक होने के कारण इनका जन्म समय एक सौ वर्ष ईसा पूर्व होना चाहिए। घटकर्पर शब्द का अर्थ है– 'घड़े का खप्पर'। कवि ने यह प्रतिज्ञा की थी कि मैं जिस प्रकार के यमक का प्रयोग करता हूँ यदि कोई उसी प्रकार के यमक का प्रयोग करके दिखा दे तो मैं उसके घर पर घड़े के खप्पर से पानी भरूँगा। इनकी इसी प्रतिज्ञा के कारण इनका नाम घटकर्पर पड़ गया। इनकी भाषा और इनकी शैली ऐसी है जो गीतिकाव्य परम्परा में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इनका यह काव्य घटकर्पर इतना अधिक प्रसिद्ध हुआ कि इनके काव्य के नाम से इनका स्वयं नाम प्रचिलित हो गया। इसी से कवि का नाम भी घटकर्पर है।

हाल :-

गाथासप्तशती के रचियता कवि हाल इसलिए प्रसिद्ध हैं क्योंकि इनके द्वारा रचित सप्तशती ऐसी गाथा पुष्टिका है जो अपने काव्य लक्षणों के कारण लक्षण ग्रन्थों में स्थान-स्थान पर उद्धृत है। ७०० छन्दों में विरचित महाराष्ट्री प्राकृत में लिखित वह ग्रन्थ अपनी रचना में भारत के कृषक जीवन का वर्णन करती है। ग्रामों और ग्राम परिवारों की जो संस्कृति होती है उसका चित्रण अपनी ग्रन्थ अपनी विशेषता है। इसमें भाषा का माधुर्य और भावों का चमत्कार ऐसा है जिससे इसकी बराबरी में कोई भी संस्कृत रचना ठहर नहीं पाती है। गाथा सप्तशती में नीति और प्रकृति का चित्रण श्रेष्ठ ढ़ंग से किया गया है। एक स्थान पर नीति का वर्णन करते हुए कवि लिखते हैं कि सज्जन व्यक्ति जब किसी स्थान पर रहता है तो वह स्थान अलंकृत हो जाता है किन्तु जब वह उस स्थान का परित्याग करता है तो वह स्थान ऐसा प्रतीत होने लगता है जैसे गाँव के समीप का कोई वटवृक्ष उखड़ गया हो।[१]

---

1. **सुजनो यं देशमलडकरोति तमेव करोति प्रवसन्।**
   ग्रामासन्नोन्मूलित महावटस्थान सदृशम्।।

   सं सा. रु., पृ0 190 से उद्धृत

अन्य गीतिकार :-

इन प्रमुख गीतिकारों के अतिरिक्त संस्कृत के अतिरिक्त संस्कृत साहित्य परम्परा में अन्य और भी गीतिकार हैं जो प्रसिद्ध हैं और जिन्होंने अपनी गीति रचना के माध्यम से संस्कृत काव्य परम्परा में अपना महत्व प्रदर्शित किया है। इन कवियों में विज्जका और शीला भट्टारिका स्फुट छन्दों के रूप में अपनी रचनायें संस्कृत समाज को देती हैं। इनकी रचनाओं में शृंगार और हास विलास का ऐसा रूप देखने को मिलता है जो हृदयाकर्षक है। इसी तरह गीतिकार क्षेमेन्द्र को भी महत्वपूर्ण गीतिकार के रूप में जाना जाता है। इन सभी कवियों के अतिरिक्त शताधिक ऐसे रचनाकार हैं जिन्होंने उत्तम कोटि के गीतिकाव्य लिखे और जिनकी परम्परा का प्रचलन निरन्तर आज तक होता चला आ रहा है।
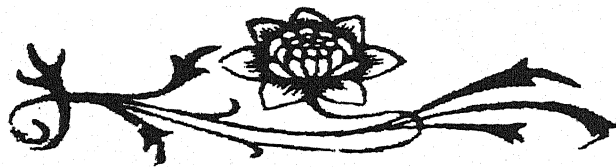
द्वितीय अध्याय

(कवि परिचय एवम् सांस्कृतिक विवेचना)
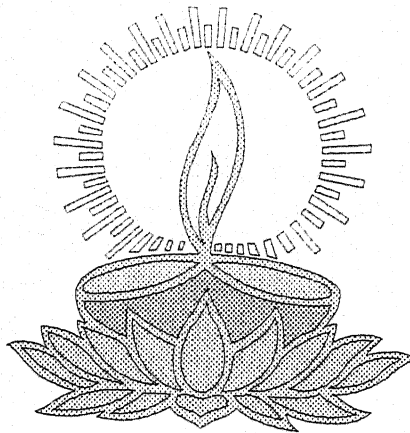
द्वितीय अध्याय

(कवि परिचय एवम् सांस्कृतिक विवेचना)

कवि परिचय-

महाकवि धोयी :-

दूत काव्य परम्परा में गीतिकाव्यकार धोयी कवि का पवनदूत प्राचीनतम दूतकाव्य प्रतीत होता है। यह कवि एक ऐसा कवि है जो केवल सामान्य कवि की श्रेणी में नहीं आता अपितु इसलिए विशिष्ट कवि की श्रेणी में आता है क्योंकि इसने कम से कम लेखन करके अधिकतम यश प्राप्त किया है। इस कवि की यही एक मात्र कृति है जो विधिवत रूप से रची हुयी प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त इनकी अन्य कोई रचना नहीं है। धोयी की इस रचना में सुन्दर शब्द विन्यास, प्रौढ़ता की कल्पना, पुष्ट भाव, सरस और सरल चित्रण शृंगार की सरलता प्राप्त होती है।

जिस तरह संस्कृत कवियों की परम्परा में एक परम्परा यह रही है कि वे अपने विषय में किसी प्रकार का स्पष्ट परिचय नहीं देते। उसी के अनुसार महाकवि धोयी ने भी अपने विषय में स्पष्ट रूप से कोई परिचय नहीं दिया है। पवन दूत के अन्त में एक श्लोक इस प्रकार का आता हे जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि ये गौड़ नरेश राजदरबार के कवि थे। इन्होंने लिखा है कि कवि रूपी भूपतियों में सार्वभौम श्री धौयी कवि ने गौढ़ नरेश से गजमण्डल, सोने की छड़ी तथा स्वर्ग जटित मूठ वाला चँवर प्राप्त किया। इस कवि ने सभी प्रकार के मर्मज्ञ रसज्ञों के लिए आनन्द देने वाला सरस्वती के जैसा एक काव्य भी रचा।[1] इस रूप में यह संकेत प्रतीत होता है कि जिस धोयी कवि का संकेत किया गया है वे पवन दूत के रचनाकार यही धोयी कवि हैं।

---

1. दन्ति व्यूहं कनकलतिकां चामरं हेम दण्डं,
   सौ गौडेन्द्रादललभत कविक्ष्माभृतां चक्रवर्ती।
   श्री धोयीकः सकलरसिक प्रीति हेतोमनस्वी
   काव्यं सारस्वतमिव महामन्त्रमेतज्जगाद।। प० दू. 101

इसी तरह से कवि धोयी ने इस पवनदूत में कविराज शब्द का प्रयोग किया है। इससे यह प्रतीत होता है कि यह शब्द किसी दूसरे के लिए प्रयुक्त न होकर स्वयं धोयी के लिए यह शब्द प्रयुक्त हुआ होगा और यह भी सम्भव है कि गौढ़ नरेश के दरबार में कविता करने के कारण और प्रतिष्ठित होने के कारण इन्हें कविराज की उपाधि प्राप्त हुई हो।[१] कवि धोयी के वास्तविक नाम के प्रति भी अनेक प्रकार का भ्रम है क्योंकि पवनदूत में यत्र-तत्र कवि चक्रवर्ती कवि रवन पति नाम भी प्राप्त होते हैं। अनेक लोग इनके नामों के लिए धोयी, धोई, धोमिक नाम मिलते हैं कवि धोयी के समकालिकों के शासनकाल का संकेत किया है और पवनदूत में भी लक्ष्मण के शासन काल का उल्लेख मिलता है। इससे यह लगता है कि कवि धोयी लक्ष्मण सेन राज्य के सभासद हो सकते हैं।[२]

राजा लक्ष्मण सेन के शासन काल के विषय में यह कहा जाता है कि इसका शासन काल ११९६ ईसवीय के आस पास का था और कवि धोयी इन्हीं के राज्य में एक आश्रम में निवास करते थे।[३]तेरहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में सदुक्ति करणामृत प्राप्त हैं जिसके रचनाकार श्रीधरदास है इन्होंने अपनी इस रचना में कवि धोयी के पदों का उल्लेख किया है। इससे भी यह प्रतीत होता है कि कवि बारहवीं शताब्दी के अन्त तक ख्याति प्राप्त कर चुका है। महामहोपाध्याय हर प्रसाद शास्त्री ने कवियों की वंशावली में कवि धोयी को वैद्य जाति कश्यप जाति राधीय बंगाली ब्राह्मण स्वीकार किया है।[४]

---

1. प0 दू0 भू0 पृ0 12
2. वहीं; पृ0 12
3. सं.सा. दू. (शा0) , 197
4. बो0 सं0 सा0 (1) पृ0 38

इस कवि की प्रसिद्धतम रचना पवनदूत ही है और इन्होंने अपनी रचना के समापन मेंजो श्लोक लिखा है उसमें यह लिखा है कि मैंने अपना जीवन सुखपूर्वक भोगकर पण्डितों की सभा में यश का अर्जन किया। राजाओं को तृप्त करने वाला और अमृततुल्य साहित्य का सृजन किया किन्तु अब एकान्त में बैठकर देव नदी के तट पर कन्दराओं का सेवन करता हुआ ब्रह्म की उपासना करना चाहता हूँ।[1] इनके इस वर्णन से यह प्रतीत होता है कि इन्होंने सम्भवतः पवनदूत के अतिरिक्त और भी रचनायें की होंगी। जो सम्भवतः ग्रन्थ रूप में इस समय प्राप्त नहीं हैं और यदि कुछ प्राप्त है तो वह स्फुट रूप में प्राप्त है।

इस रूप में यह लगभग निश्चित है कि इनका जन्म समय बारहवीं शताब्दी ही होना चाहिए और ये राजा लक्ष्मण सेन के राजदरबार में रहने वाले थे। इस समय इनकी जो रचना उपलब्ध है वह पवनदूत ही है। इसके अतिरिक्त इनकी अन्य कोई रचना उपलब्ध नहीं है।

कालिदास :-

संस्कृत साहित्य के प्रसिद्धतम कवि कालिदास के विषय में भी निश्चित रूप से कुछ भी कह पाना सम्भव नहीं है। कालिदास का जन्म कहाँ हुआ था, इनकी जनम शताब्दी कौन है? इस विषय में अभी तक मत-भिन्नता बनी हुयी है। कोई कालिदास को प्रथम शताब्दी का कवि कहता है तो कोई ईसा पूर्व का कवि बताता है। केवल कुछ किंवदन्तियाँ इस प्रकार की हैं जिसके आधार पर कालिदास के जीवन वृत्त का निर्धारण किया जाता है। एक किंवदन्ती तो यही है कि कालिदास बड़े मूर्ख थे ओर उनका विवाह एक विदुषी के साथ करा दिया गया था। जब उस विदुषी को यह ज्ञात हुआ था कि उसका विवाह एक मूर्ख के साथ हो गया है तो उसने कालिदास का अपमान करके उसे महल से नीचे धकेल दिया था। बाद में वे सरस्वती के वरदान से विद्वान् हुए।

---

1. कीर्तिर्लब्धा सदसि विदुषां शीतलक्षौणिपाला,
   बाक्सन्दर्भाः कृतिचिद्मृतस्यन्दिनो निर्मिताश्वः।
   तीरे सम्प्रत्यमरसरितः क्वापि शैलोपकण्ठे,
   ब्रह्माभ्यासे प्रयतमनसा नेतुमीहे दिवानि।। प0 दू0 104

कालिदास ने अपनी पत्नी के द्वार पर जाकर उससे द्वार खोलने को कहा इसके उत्तर में उनकी पत्नी ने 'अस्ति कश्चिद् वाग्विशेष' के द्वारा जब कालिदास की वाणी का वैशिष्ट्य पूछा तो इसके उत्तर में कालिदास ने तीन काव्य ग्रन्थों की रचना की। 'अस्ति कश्चिद् वाग्विशेष' में प्रयुक्त 'अस्ति' पद को लेकर उन्होंने कुमार सम्भवम् लिखा। ''अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः'' यह पद कुमारसम्भवम् का पहला पद है। विद्योत्तमा के वाक्य में जो दूसरा पद 'कश्चित्' था उसके उत्तर में कालिदास ने मेघदूतम् की रचना की। ''कश्चित् कान्ता विरहगुरुणा''- यह पद मेघदूतम् का प्रथम पद है। इसी तरह से विद्योत्तमा के वाक्य में वाग्विशेष जो पद था उसके उत्तर में महाकवि कालिदास ने रघुवंश महाकाव्य की रचना की। ''वागर्थाविव संपृक्तौ- यह रघुवंश महाकाव्यम् का प्रथम श्लोक है। इस किंवदन्ती से यह अनुमान किया जा सकता है कि कालिदास अप्रतिम विद्वान् थे। और उन्होंने अपने वैदुष्य से इस प्रकार के ग्रन्थों की रचना की जो ग्रन्थसंस्कृत साहित्य में श्रेष्ठतम ग्रन्थ रत्न कहे जा सकते हैं। एक दूसरी किंवदन्ती कालिदास के विषय में और है उसके अनुसार यह कहा जा जाता है कि कालिदास अपने जीवन के अन्तिम समय में लंका के राजा कुमारदास के यहाँ रहे थे। बाद में इन्होंने यहाँ एक वेश्या का सहारा लिया था जिस वेश्या ने लालच के वश में कालिदास की हत्या कर दी। कहा जाता है कि कुमारदास के दरबार में एक पद दिया गया था जिसकी पूर्ति करने पर वहाँ से पुरस्कार मिलना था।[१] कुमारदास के दरवार में नृत्य करने वाली गणिका ने यह पद जब कालिदास को दिखाया तो कालिदास ने तत्काल ही उसकी पूर्ति कर दी।[२] इस पद को सुनकर उस गणिका के मन में लोभ आ गया और तब लोभ के वशीभूत होकर उसने कालिदास की हत्या कर दी। कुमारदास का समय पाँच सौ ईसवीय माना जा सकता है।[३]

---

1. कमलस्य कमलोत्पत्तिः श्रूयते न तु दृश्यते। संसा.इ.(शा.)पृ027 से उद्धृत।
2. बाले तव मुखाम् भोजे कथमिन्दीवरद्वयम्।। वही,
3. सं.सा.स.इ.,पृ0136

कालिदास के जन्म समय के विषय में जो मत प्रचलित हैं उनमें से एक मत यह है कि कालिदास की रचना मालविकाग्निमित्रम् में भरत वाक्य में प्रयुक्त अग्निमित्र पद है। शुंग वंशीय राजा अग्निमित्र विदिशा के राजा थे जिसका वर्णन कालिदास ने मेघदूतम् में किया है। उस राजा का समय १५० ईसा पूर्व का रहा है इसलिए यह सम्भव हो सकता है कि कालिदास १५० ईसा पूर्व में रहे हों किन्तु यह मत जिन्हें अनुकूल प्रतीत नहीं होता वे यह कहते हैं कि कालिदास किसी विक्रमादित्य उपाधिधारी राजा के दरबारी कवि थे। अग्निमित्र को किसी ने भी विक्रमादित्य नहीं माना इसलिये यह मत तर्क संगत प्रतीत नहीं होता। जिन समीक्षाकारों ने कालिदास को ईसा पूर्व के प्रथम शताब्दी के राजा विक्रमादित्य का दरबारी कवि माना है वे यह कहते हैं कि जन श्रुतियाँ यही प्रमाणित करती हैं। इसके साथ ही विक्रमोर्वशीय नाटक के नामकरण में यही हेतु है और विक्रम शब्द का प्रयोग भी इस नाटक में हुआ है। एक तर्क यह दिया जाता है कि इन्दुमति के स्वयंवर के अवसर पर किये गये वर्णन में जिस पाण्ड्य राजा का संकेत है वह प्रथम शताब्दी में हुआ था। यह राजा दक्षिण में अगरपुर का शासक था सम्भव है कालिदास इस समय में रहे हों। कालिदास ने अपने ग्रन्थों में शिव के प्रति आस्था प्रकट की है इसलिए वे शैव राजाओं के आश्रित रहे हैं। इन तर्कों के अतिरिक्त अन्य और भी अनेक तर्क हैं जिनमें कालिदास को पाँचवीं शताब्दी छठवीं शताब्दी में उत्पन्न हुए कवि के रूप में देखने का प्रयत्न किया जाता है। कालिदास के जन्म सम्बन्ध के विषय में न केवल भारतीय समीक्षाकारों ने अपितु विदेशी समीक्षाकारों ने भी तरह-तरह से विचार किया है और कालिदास को ईसा की प्रथम शताब्दी से ईसवीय की छठी शताब्दी का कवि बताने का प्रयत्न किया है। फिर भी निष्पक्ष रूप में जो मत बहुतायत के साथ सिद्ध है उसमें यह कहा जाता है कि कालिदास चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासनकाल में विद्यामान थे। इसलिए कालिदास को ईसा पूर्व तीसरी चौथी शताब्दी का कवि होना चाहिए।[१]

1. मे. दू. (उ.), भू0 पृ0 24

कालिदास के जन्म स्थान के सम्बन्ध में भी मत-मतान्तर हैं। कोई इन्हें विदर्भ का निवासी बताता है तो कोई इन्हें बंगाली उज्जयिनी का निवासी बताता है। कालिदास का नाम बंगाली ही प्रतीत होता है। कालिदास ने मेघदूतम् 'आषाढ़स्य प्रथम दिवसे' के द्वारा जिस प्रथम दिवस की चर्चा की है वह सौरमास की गणना के आधार पर गिना जाता है इससे यह लगता है कि यह गणना बंगाल की है और इस आध ार पर कालिदास को बंगाल का कवि माना जाना चाहिए। किन्तु इस मत के समर्थक बहुत अधिक लोग नहीं हैं। कुछ लोग यह कहते हैं कि काली देवी का मन्दिर उज्जैन में अवस्थित है और यह अधिक सम्भव है कि कालिदास उसी काली देवी के उपासक होवें। इसके अतिरिक्त उन्होंने आषाढ़स्य प्रथम दिवसे' का प्रयोग सामान्य रूप से ही किया है इसका विशेषार्थ नहीं निकला जाना चाहिए।

एक भारतीय विद्वान् कालिदास को कश्मीर का निवासी होना बताते हैं। वे अपने इस कथन के समर्थन में यह तर्क देते हैं कि कालिदास ने प्रकृति का जैसा चित्रण किया है और उसमें हिमालय का जैसा चित्रण किया है वह अनूठा है। उनका मत है कि मेघदूत की जिस अल्कापुरी का वर्णन किया है वह हिमालय की उपत्तिकाओं की ओर संकेत करता है। इसी तरह से 'विक्रमोर्वशीयम्' में उर्वशी और पुरुरवा का जो मिलन वर्णन वर्णित किया है वह भी गन्धमलय पर्वत में वर्णित है और यह पर्वत काश्मीर की घाटी में ही है। उनका यह भी मन्तव्य है कि महर्षि कण्व का आश्रय और मरीचि के आश्रम का जोवर्णन है उसके अनुसार भी इन आश्रमों की स्थिति हिमालय पर्वत के आस पास ही होनी चाहिए। रघुवंश महाकाव्यम् में उल्लिखित निकुम्ब की कथा का सन्दर्भ भी वे देते हैं और यह कहते हैं कि यह कथा कश्मीर की है। इस रूप में वे अपने सभी तर्क देकर यही सिद्ध करते हैं कि कवि कालिदास कश्मीर के कवि थे।

किन्तु इन सब तर्कों के होते हुए भी बहुमत से यह कहा गया है कि कालिदास को जितना अधिक प्रेम उज्जयिनी से है और जिस रूप में उन्होंने उज्जयिनी का वर्णन किया है उससे यही कहना तर्क संगत है कि कालिदास को उज्जयिनी का कवि होना चाहिए।

कालिदास की रचनाओं के सम्बन्ध में बहुत अधिक भ्रमात्मक स्थिति नहीं है। इन्होंने महाकाव्य, नाटक और खण्डकाव्य के रूप में सात ग्रन्थों की रचना की। इनके नाटकों में अभिज्ञान शाकुन्तलम्, विक्रमोर्वशीयम् और मालविकाग्निमित्रम् सम्मिलित हैं। महाकाव्यों में रघुवंश महाकाव्यम् और कुमारसम्भवम् की गणना होती है। गीतिकाव्य में मेघदूत और ऋतुसंहार परिगणित किये जाते हैं। इसके अतिरिक्त और भी रचनाओं का नाम कालिदास के साथ जोड़ा जाता है, जिनमें कालीस्त्रोत, गंडकाष्टक, ज्योतिर्विदाभरण, राक्षस काव्य और श्रुतबोध को विशेष रूप से गिना जाता है। कुछ और भी ऐसी कृतियाँ हैं जिन्हें कालिदास द्वारा रचित कह दिया जाता है और इस तरह उनकी संख्या ४१ के लगभग बतायी जाती है किन्तु यह सभी कुछ मान्य नहीं है। रचना की भाषा की प्रौढ़ता, भावों की प्रगल्भता, शैली की प्रौढ़ता आदि की दृष्टि से यदि देखा जाये तो कालिदास की प्रथम रूप से उल्लिखित सात रचनायें ही ऐसी हैं जो कालिदास की हैं। शेष रचनायें किन्हीं ऐसे कवियों की हैं जिन्होंने कालिदास की रचनाओं से प्रभावित होकर उनके साथ कालिदास का नाम जोड़ दिया।

साहित्य समीक्षकों ने कालिदास की रचनाओं का रचनाक्रम निर्धारित करने का प्रयत्न भी किया है। इसमें वे रचनाओं की भाषा की प्रौढ़ता और कालिदास के ज्ञान की कसौटी को आधार बनाते हैं। इस दृष्टि से ऋतुसंहार उनकी प्रथम रचना है। इसमें अभिज्ञान शकुन्तलम् जैसी प्रौढ़ता नहीं है और भाषा तथा भावों की प्रगल्भता भी देखने को नहीं मिलती। दूसरी रचना कुमार सम्भवम् है, तीसरी रचना मालविक्राग्निमित्रम् है और इसके बाद विक्रमोर्वशीयम्, मेघदूतम्, रघुवंश महाकाव्यम् और अभिज्ञान शकुन्तलम् का क्रम बनता है। यद्यपि कालिदास श्रेष्ठ रचनाकार हैं और उनकी सभी कृतियों में उनका शिल्प प्रस्तुत हुआ है तथापि अभिज्ञान शाकुन्तलम् की भाषा, कथा प्रस्तुति और भावों की चारूता अपना विशेष स्थान रखती है इसलिए अभिज्ञान शाकुन्तलम् इनका श्रेष्ठतम ग्रन्थ है।

आचार्य मेरुतुङ्ग :-

कालिदास के मेघदूत ने अपनी रचनामाधुर्य से संस्कृत जगत् में ऐसा वातावरण प्रस्तुत कर दिया था कि बाद के अनेक कवियों ने इनका अनुसरण करके अनेक दूत काव्यों की रचना की। आचार्य मेरुतुङ्ग ने अपने दूतकाव्य का नाम भी मेघदूत किया जिसे जैनमेघदूतम् कहा जाता है। यद्यपि जैन मेघदूतम् में मेघ को दूत बनाने की कल्पना का आधार कालिदास का मेघदूत हो सकता है, फिर भी आचार्य मेरुतुङ्ग ने जिस जैनमेघदूतम् की रचना की है वह अप्रतिम है और इसमें काव्य का चमत्कार विशेष रूप से देखने को मिलता है।

जैन साहित्य परम्परा में मेरुतुङ्ग के नाम से तीन आचार्यों की चर्चा की गयी है। इनमें से दो ही ऐसे हैं जो काव्यकार के रूप में प्रसिद्ध हुए। इसमें से मेरुतुङ्ग सूरी इन्द्रप्रभ सूरी के शिष्य थे। इन्होंने अपना ऐतिहासिक ग्रन्थ प्रबन्ध चिन्तामणि विक्रम सम्वत् १३६१ में पूर्ण किया था।[1] दूसरे आचार्य मेरुतुङ्ग सूरी ही वे आचार्य हैं जिन्होंने जैनमेघदूतम् की रचना की। इनका जन्म विक्रम सम्वत् १४०३ में हुआ था।[2]

आचार्य मेरुतुङ्ग सूरी जैन साहित्य के एक ऐसे आचार्य हैं जिन्होंने स्वयं भी अपने जीवन के विषय में कोई बहुत संकेत नहीं किया है किन्तु अभी एक पुस्तक प्राप्त हुई है जो मेरुतुङ्ग सूरी रास के नाम से बम्बई से प्रकाशित हुयी है और किसी कवि ने इसमें आचार्य मेरुतुङ्ग सूरी का जीवनवृत्त दिया है। इसके अतिरिक्त और भी दो संकेत ऐसे हैं जिनके आधार पर इनका जीवन वृत्त कुछ मात्रा में ज्ञात होता है।

---

1. प्र0चि0, ग्रन्थकार की प्रशस्ति –5
2. जै0मे0दू0, पृ0 72

मरूभूमि मारवाड़ प्रदेश के अन्तर्गत नाणी नामक नगर में विजयसिंह निवास करते थे। विजयसिंह की पत्नी के एक पुत्र हुआ जो अत्यन्त विलक्षण था। उस पुत्र का विवाह एक नाल देवी नामक कन्या के साथ हुआ था जिससे एक महा तेजस्वी पुत्र की उत्पत्ति हुयी। गर्भस्थ शिशु शनैः-शनैः बढ़ा और सम्बत् १४०३ में उस गर्भ का जन्म हुआ। बालक काल में इसका नाम वस्तिककुमार रखा गया। कुछ दिनों के पश्चात् वह बालक एक दिन अपने ग्राम में आये हुए आचार्य महेन्द्रप्रभसूरि के प्रवचन से प्रभावित हुआ। तब उसने अपने माता-पिता की आज्ञा प्राप्त करके १४१० में उन्हीं आचार्य से दीक्षा प्राप्त कर ली। दीक्षा के अवसर पर इस बालक का नाम मेरुतुंग रखा गया।[1]

दीक्षा प्राप्त करने के पश्चात् इस बालक ने विधि पूर्वक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया और अपने तपोबल से अनेक प्रकार की सिद्धियाँ भी प्राप्त कीं। इसी के साथ इस बालक ने अपने पाण्डित्य से सभी को चमत्कृत किया। इस प्रकार प्रतिभा सम्पन्न होने के बाद जब वे अपने आचार्य के समक्ष उपस्थित हुए तो उनके आचार्य महेन्द्रप्रभसूरि ने विक्रम सम्वत् १४२६ में पाटण नामक स्थान में इन्हें 'सूरि' पद से अलंकृत किया। आचार्य मेरूतुंग सूरि के विषय में अनेक ऐसी चर्चायें हैं जिनमें यह कहा जाता है कि इन्हें बहुत सी सिद्धियाँ प्राप्त हुयी थीं। इन सिद्धियों के बल से कभी-कभी आचार्य दूसरों का हित साधन भी करते थे। इसी तरह से जब ये भ्रमण कार्य में संलग्न रहते थे तो इन्हें अनेक प्रकार की उपाधियाँ प्रदान की थीं उनमें मन्त्र प्रभावक और महिमानिधि उपाधि प्रमुख थीं।[2]

आचार्य ने अपने वैदुष्य और अपने अप्रतिम ज्ञान से शिष्य परिवार भी तैयार कर लिया था। इनके शिष्यों में जयकीर्ति सूरि माणिक्य शेखर सूरि मेरुनन्दन सूरि रत्नशेखर सूरि आदि प्रसिद्ध थे। इनकी शिष्याओं में साध्वी श्री महिमा श्री और मेरुलक्ष्मी भी सम्मिलित थीं। अन्त में इनका जीवन सम्वत् १४७१ में परिपूर्ण हुआ था।[3]

---

1. जै0मे0दू0, पृ0 74
2. वही, पृ0 76
3. वही, पृ0 77

आचार्य मेरुतुङ्ग सूरि की रचनायें भी अनेक हैं। इन्होंने जिन रचनाओं को प्रस्तुत किया उनसे जैन साहित्य तो सक्षम हुआ ही भारतीय वाङ्मय भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका। इन्होंने कितनी रचनायें प्रस्तुत कीं, इस विषय में भी अनेक प्रकार के मत हैं। किसी समीक्षाकार ने यह लिखा है कि इन्होंने आठ ग्रन्थों की रचना की थी।[1] जबकि अन्य समीक्षाकार ने यह संकेत दिया है कि इनकी रचनाओं की संख्या बारह थी।[2] एक दूसरे आचार्य यह संकेत करते हैं कि इन्होंने १६ रचनायें की हैं। जबकि कुछ समीक्षाकारों का मत यह है कि इनकी ३६ रचनायें प्राप्त हैं।

इनकी रचनाओं में षड्दर्शन समुच्चय, बालबोध व्याकरण धातु पारायण, लघु सतपदी, शतक भाष्य, सम्भवनाथ चरित्र, नाभिवंश काव्य, नेमिदूत महाकाव्य, उपदेश चिन्तामणि, चतुस्रवृत्ति आदि ग्रन्थ महत्वपूर्ण हैं। आचार्य मेरुतुङ्ग ने जहाँ एक ओर दर्शन के विविध पक्षों का आरोहन करके दूसरे दर्शन के सिद्धान्तों का खण्डन करते हुए जैन दर्शन के सिद्धान्तों का मण्डन किया है। वहीं इन्होंने व्याकरण ग्रन्थों की रचना भी की है। इनके व्याकरण ग्रन्थों में व्याकरण के सिद्धान्तों का विवेचन होने के साथ-साथ धातुओं का पाठ प्राप्त होता है। दूत काव्यों में जैन मेघदूतम् और नेमिदूत महाकाव्य का उल्लेख इनके नाम से किया जाता है। इसमें से नेमिदूत महाकाव्य है। जबकि जैनमेघदूत एक खण्डकाव्य हैं। जैनमेघदूत की प्रशंसा में अनेक साहित्यकारों ने अपनी लेखनी का प्रयोग किया है और यह कहा है कि विरह के गीतिकाव्य के रूप में जैन मेघदूतम् की रचना जिस प्रकार हुयी है और इसने साहित्य में जो मानदण्ड उपलब्ध किये हैं, वैसी अन्यत्र दुर्लभ हैं। आचार्य मेरुतुङ्ग ने नेमिनाथ के जीवन को अवलम्बन बनाकर इस काव्य की रचना की है। और इसमें न केवल वे सफल हुए हैं अपितु एक विशेष स्थान प्राप्त किया है।

---

1. सं. सं. का., पृ. 194–195 ।
2. आ. क. गौ. ग्र., पृ. 26 ।
3. वही, पृ. 88–89 ।

कथावस्तु :-

यहाँ पर जिन खण्डकाव्यों को स्वीकृत किया गया है उनमें से पवनदूत एक ऐसा खण्डकाव्य है जो कालिदास के मेघदूत के बाद अपना विशिष्ट स्थान रखता हैं। यह खण्डकाव्य एक प्रकार से मेघदूतम् का अनुकरण करता है जिसमें पवन को दूत बनाया गया है और एक नारी से प्रणय की याचना की गयी है। पवन को दूत बनाकर कवि धोयी ने अपनी विशेष कल्पनाशक्ति का परिचय दिया है। उनका मन्तव्य यह है कि जिस प्रकार पवन अनेक गतियों में बहता है उसी प्रकार से मानव मन भी अनेक गतियों में बहता है। जिस तरह पवन के अनेक भाव होते हैं उसी तरह से मानव मन में भी अनेक भाव उत्पन्न होते हैं। पवनदूत का कथानक सरल ढ़ंग से सौ श्लोकों में लिखा गया है जिसमें चार श्लोक कवि परिचय के जोड़ दिए गए हैं। इसमें जो कथानक दिया गया है उसमें यह वर्णन है कि गौड़देश का राजा लक्ष्मणसेन विजय यात्रा में मलय पर्वत पर जाता है और वापस आता है। उसकी इस यात्रा में मलय पर्वत पर रहने वाली गन्धर्व कन्या उसके रूप को देखती है और उसके प्रेम में पड़ जाती है। इसी समय वसन्त ऋतु आती है जिसमें वसन्त का वायु प्रभाव चलता है और इसमें वायु का सन्देश देकर राजा के पास भेजती है। वह वायु अनेक ऐतिहासिक स्थानों से होता हुआ कुवलयावती को सन्देश देता है। कवि ने इस खण्डकाव्य को वर्ण्य विषय की दृष्टि से विभाजित कर दिया है। इसमें पहले श्लोक में कनक नगरी का वर्णन है, दूसरे और तीसरे श्लोक में कुवलयवती का परिचय है। बत्तीस श्लोकों में मलय पर्वत से लेकर बंगाल तक के हरे-भरे भू-भाग का वर्णन है। उन्नीस श्लोकों में राजा लक्ष्मणसेन तथा उसकी राजधानी उरगपुर का वर्णन है। पाँच श्लोकों में इस खण्डकाव्य में राजा की वीरता का वर्णन किया गया है, दो श्लोकों में नायिका के चमत्कारी वियोगों का वर्णन है। शेष श्लोकों में कवि ने अपना परिचय दिया है, अपनी प्रशंसा की है और अन्त में यह आकांक्षा व्यक्त की है कि वह अब कहीं जाकर एकान्त में ब्रह्म का अभ्यास करना चाहता है। इस खण्डकाव्य की कथावस्तु का संक्षेप में यही संकेत है।

संदेश काव्यों में कालिदास का मेघदूत खण्डकाव्य एक ऐसी कृति है जिसमें संदेश काव्यों की परम्परा को पुष्टता प्रदान की। यह दूतकाव्य अपनी विशिष्टता के लिए प्रख्यात है जबकि इसका कथानक किसी बड़े चमत्कार को प्रदर्शित नहीं करता। कालिदास ने अपने इस काव्य के कथानक में अलकानगरी के राजा के एक सेवक का विरह वृतान्त वर्णित किया है और उसी को एक विशेष चमत्कार के रूप में प्रदर्शित किया है। अलकानगरी में रहने वाला कोई एक यक्ष अपने महाराज की सेवा में इसलिए चूककर बैठता है क्योंकि वह अपनी पत्नी के संग रहने के कारण समय का ध्यान नहीं रख पाता। राजा उसकी इस त्रुटि को क्षमा नहीं करता और उसे एक वर्ष के लिए अपनी नगरी से निष्कासित कर देता है। यक्ष अपने नगर से निष्कासित होकर रामगिरि पर्वत पर अपना आश्रय बनाता है और वहीं रहता हुआ आषाढ़ मास के प्रथम दिवस में आकाश में छाये हुए मेघ को देखकर अपनी प्रिया को संदेश भेजने का प्रयत्न करता है। वह सन्देश भेजने के लिए उस मेघ का चयन करता है जो धुंआ, प्रकाश और जल का सम्मिश्रण है तथा अचेतन की श्रेणी में आता है। वह संदेश भेजने के योग्य नहीं है इसलिए कालिदास इसे तर्कसंगत बनाने के लिए कहते हैं कि जो कामपीड़ित होता है वह वेदना की उस चर्मावस्था में चेतन और अचेतन का भेद-भूल जाता है इसलिए वह मेघ से संदेश ले जाने का अनुरोध करता है।[1]

---

1. धूमज्योतिः सलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः?
   सन्देशार्थाः क्व पटुकरणै प्राणिभिः प्रापणीयाः?
   इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन् गुह्यकस्तं ययाचे
   कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतना चेतनेषु।।

   मे. दू.- 5

मेघ के समक्ष खड़े होकर वह यक्ष सबसे पहले मेघ की प्रशंसा करता है। वह उससे कहता है कि तुम्हारा जन्म श्रेष्ठ वंश में हुआ है, तुम सभी की कामनाओं की पूर्ति करने वाले हो इसलिए मैं तुम्हारे समक्ष आया हूँ। और अपनी कामना की पूर्ति के लिए तुमसे प्रार्थना करता हूँ। कालिदास अपने इस वर्णन के साथ ही एक विशिष्ट सूक्ति का वर्णन करते हैं और कहते हैं कि श्रेष्ठ वंश में उत्पन्न हुए व्यक्ति के समक्ष की गयी याचना यदि अपूर्ण भी रहती है तो वह श्रेष्ठ है अपेक्षाकृत इसके कि किसी नीच व्यक्ति से की गयी प्रार्थना की पूर्ति की जाये। इसके बाद वह मेघ के लिए मार्ग का कथन करता है और कहता है कि जब तुम अलकानगरी में पहुँचोगे तो मेरे लौटते हुए दिनों की गणना करते हुए एक-एक पुष्प रखते हुए मेरी पत्नी को मेरे विरह में व्यथित होते हुए देखोगे। यद्यपि अङ्गनाओं का हृदय फूल के पुष्प के सदृश कोमल होता है और उसे विरह की प्रबल वेदना से भंग हो जाना चाहिए किन्तु वह पुनर्मिलन की आशा में बना रहता है। वह मेघ को कहता है कि जब तुम अल्का के पथ पर चलोगे तो तुम्हें मार्ग में तुम्हारे अनुकूल चलती हुयी वायु मिलेगी और जिस-जिस मार्ग अथवा नगर से तुम जाओगे वहाँ पर निवास करने वाली रमणियों के द्वारा अवश्य ही तुम देखे जाओगे। आगे चलने पर तुम्हें निर्विन्ध्या नाम की नदी मिलेगी जो पत्थरों पर गिरती हुयी अपने वेग से बह रही होगी। वह जल की अल्पता के कारण अत्यधिक दुर्बल हो गयी होगी इसलिए जल वर्षा करके तुम इसे परिपूर्ण और सौभाग्यशली बना देना।

कालिदास इसी क्रम में अवन्तिनगरी का संकेत भी करते हैं और वे लिखते हैं कि तुम उस अवन्तिनगरी को प्राप्त करोगे जो स्वर्ग केएक उज्ज्वल टुकड़ें की तरह है और जिस नगरी के निवासी प्रायः उदयन की कथा कहते हैं। कालिदास उस नगरी के इतिहास का स्मरण कराते हुए मेघ से कहते हैं कि उसी उज्जयिनी नगरी में उदयन ने वासवदत्ता का अपहरण किया था। यही वह उज्जयिनी नगरी है जहाँ पर प्रद्योत का सोने का ताल वृक्षों का वन था। इसी उज्जयिनी नगरी में नलगिरि नाम का हाथी मदमत्त होकर घूमता था और इसी उज्जयिनी नगरी में अनेक कथायें कहकर लोगों का मनोरंजन करते हैं। उस अलकानगरी में भगवान् शिव का निवास है इसलिए इसका स्मरण कराता हुआ यक्ष मेघ से कहता है कि तुम यदि इस नगरी में दूसरे किसी समय में पहुँच भी जाना तब भी सायंकाल तक वहाँ अवश्य रुकना। क्योंकि सायंकाल के समय में महाकालेश्वर की आरती होती है जिसमें बजते हुए नगाड़ों की ध्वनि के साथ तुम भी अपने गम्भीर गर्जन के फल को प्राप्त कर सकोगे। इसी प्रकार से जब सायं भगवान शिव की आरती के समय ताण्डव नृत्य होगा तो तुम वहाँ के ऊँचे-ऊँचे वृक्षों में छा जाना और भगवती शिवा के अनवरत देखे जाते हुए भगवान शिव की उस इच्छा को पूरी करना जिससे वे गज-चर्म ओढ़ने की इच्छा रखते हैं।[1]

---

1. पश्चादुच्चैर्भुज-तरुवनं मण्डलेनाभिलीनः।
   सान्ध्यं तेजः प्रतिनवजपापुष्परक्तं दधानः।
   नृत्यारम्भे हर पशुपतेरार्दनागाजिनेच्छां
   शान्तोद्वेगस्तिमितनयनं दृष्टभक्तिर्भवान्याः।।

   मे. दू. (पूर्व) श्लोक- 36

मेघ की प्राप्ति से वह क्षेत्र सम्पन्न हो जाएगा, सुगन्धित हो जाएगा इसका वर्णन करते हुए कालिदास ने यह लिखा है कि तुम्हारी वर्षा के कारण वहाँ की भूमि सुगन्धित हो जायेगी और शीतल पवन धीरे-धीरे तुम्हारे साथ ऐसे चलेगी जैसे वह तुम्हें पंखा झल रही होवे। मेघ के लिए लालित्य का वर्णन करने के लिए कालिदास ने यह लिखा है कि तुम जब आगे अल्का की ओर बढ़ोगे तो तुम्हें ब्रह्मावर्त देश प्राप्त होगा। उस ब्रह्मावर्त देश को कुरुक्षेत्र भी कहा जाता है और यह वही प्रसिद्ध कुरुक्षेत्र है जहाँ पर क्षत्रियों का बहुत बड़ा युद्ध हुआ था। उस कुरुक्षेत्र में पाण्डवों और कौरवों ने आपस में संघर्ष करके अपने असंख्य बाणों के द्वारा क्षत्रियों के मस्तकों को उसी तरह से काटकर गिराया था जिस तरह से तुम मूसलाधार वृष्टि से कमलों को गिराते हो। आगे चलने के बाद तुम्हें कनखल के समीप जाहन्वी का दर्शन होगा। उस जान्हवी ने अपनी तरंग रूपी हाथों से भगवान् शिव के जटाजूटों को पकड़ लिया और इस तरह से वह मानों पार्वती का उपहास कर रही हो। यह जान्हवी ऐसा व्यवहार कर रही है जिसका स्वामित्व भगवान् शिव पर होवे और उसे भगवती पार्वती के क्रोध की किसी प्रकार की चिन्ता न होवे और ऐसे भगवती पार्वती के क्रोध की किसी प्रकार की चिन्ता न होवे। ऐसी निश्चिन्तता से ही उसने भगवान् शिव के शीश पर स्थान प्राप्त कर लिया है। हे मेघ! तुम उसी जान्हवी का दर्शन प्राप्त कर सकोगे।[1]

---

1. तस्मात् गच्छेरनुकनखलं शैल राजा वतीर्णा
   जह्नोः कन्यां सगरतनयस्वर्गसोपान- पंक्तिम्।
   गौरीवक्त्रभु कुटिरचनां या विहस्मेव फेनैः
   शम्भोः केशग्रहणमकरो दिन्दुलग्नोर्मिहस्ता।। मे.दू.(पूर्व.) – 50

कालिदास ने उत्तरमेघ में जो सन्देश दिया उसमें मुख्य रूप से अलकानगरी की चारूता का और उसकी महनीयता का वर्णन किया गया है। यक्ष मेघ के सामने उपस्थित होकर कहता है कि जब तुम अलका नगरी को प्राप्त करोगे तो वहाँ के बड़े-बड़े महल नृत्य और मृदंग वाद्यों से गुञ्जरित हो रहे होंगे। वहाँ के फर्श मणिखचित होंगे। देवालय गगनचुम्बी होंगे, इन्द्रधनुष की छटा वहाँ प्रदर्शित हो रही होगी और वहाँ का शोर तुम्हारे समान धन गर्जन जैसा ही होगा।[1]

अलका के वर्णन क्रम में वह वहाँ के भवनों की मनोरमता के विस्तार का वर्णन करता है साथ ही कहता है कि अलका के पुष्प नित्य प्रति पुष्पित बने रहते हैं। वे केवल अपनी ही ऋतुओं में पुष्पित नहीं होते अपितु उनमें बारहों महीने पुष्प लगे रहते हैं। उन पुष्पों पर भौंरेहर समय गुन्जारित होते हैं। हंसों की पंक्तियाँ सभी ओर उड़ती रहती हैं, मयूर नृत्य करते हैं और अपनी वाणी से निरन्तर गुञ्जार करते रहते हैं, चन्द्रमा कभी अस्त नहीं होता इसलिए वहाँ की रात्रियाँ अन्धकार वाली नहीं होती उस अल्का में निरन्तर आनन्द ही आनन्द रहता है इसलिए वहाँ पर किसी के नेत्रों में दुःख के आँसू नहीं होते। यदि किसी के नेत्रों में अश्रुपात होता भी है तो वह केवल आनन्दजनित ही होता है। इसी तरह से उस अलका में किसी का किसी के साथ विरोध नहीं है अतः वहाँ किसी प्रकार का कलह दिखायी नहीं देता।

---

1. विद्युत्वन्तं ललित-वनिताः सेन्द्रचापं सचित्राः
संगीताय प्रहतमुरजाः स्निग्धगम्भीर घोषम्।
अन्तस्तोयं मणिमयभुवस्तुङगाभ्रं लिहाग्राः
प्रसादास्त्वां तुलयितुमलं यत्र तैस्तैर्विशेषैः।। मे.दू.(उत्तर मेघ.)।

यक्ष मेघ को कहता है कि जब तुम अलका नगरी में पहुँचोगे तब कुबेर के घर से उत्तर दिशा की ओर दूर से ही पहचानने योग्य मेरा घर तुम्हें दिखायी देगा। मेरे घर का तोरण इन्द्रधनुष के समान दूर से ही देखने योग्य है। मेरे द्वार पर एक मन्दार का वृक्ष है जिसे मेरी प्रिया ने दत्तक पुत्र की तरह बढ़ाया है। जब तुम मेरे घर में प्रवेश करोगे तो तुम्हें वहाँ पर मेरी प्रिया वियोग व्यथा से व्यथित दिखायी देगी। वह मेरे वियोग के कारण कभी भी ठीक से पूरी निद्रा ग्रहण नहीं कर पाती इसलिए वह यदि निंद्रित अवस्था में हो तो तुम अपना गर्जन करके उसकी निद्रा को भंग मत करना। उससे यह कहना कि मैं निरन्तर ही स्वयं अपने को समझाता रहता हूँ और उसे भी स्वयं को समझाते रहना चाहिए। कोई भी ऐसा नहीं है जिसका समय सदा एक सा रहता हो। सुख और दुःख का क्रम रथ के पहिए में लगे हुए अरे के समान है जो नीचे आते-जाते रहते हैं इसलिए यदि आज हम दुःखी हैं तो कल सुख का अनुभव करेंगे।[1] इस रूप में जब वह अपना सन्देश देता है तो यह कहता है कि जिस समय भगवान् विष्णु शेषशैया से उठेंगे उसी समय हमारे वियोग का समय समाप्त हो जायेगा और वही यह समय होगा जब हम दोनों पुनः मिल सकेंगे।

---

1. नन्वात्मानं बहु विगणयन्नात्मनैवावलम्बे
   तत्कल्याणि ! त्वमपि नितरां मागमः कातरत्वम्।
   कस्मात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा
   नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण।। मे.दू. (उत्तर) 48

इस रूप में इस खण्डकाव्य के अन्त में वह यक्ष मेघ को कहता है कि तुम वियोग के कारण तीव्र दुःख वाली उस मेरी प्रिया को यह संदेश देकर तुरन्त लौटना और उसके प्राणों की रक्षा करने के साथ-साथ मेरे प्राणों की रक्षा करना। इसके पश्चात् वह यक्ष मेघ से पूछता है कि हे मित्र ! क्या तुमने मेरा यह कार्य करने का निश्चय कर लिया है, तुम चातकों के द्वारा जल माँगने पर बिना गर्जन किये हुए उन्हें जल देते हो इसलिए तुम मेरी इस प्रार्थना को ठुकरा दोगे, मैं ऐसी कल्पना भी नहीं कर सकता। मैं यह जानता हूँ कि सज्जन व्यक्ति का प्रत्युत्तर वही होता है जब वह कार्य को पूर्ण कर देता है। मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ कि जाओ और मेरा सन्देश कहो।[1] अन्त में कालिदास इस खण्डकाव्य के समापन के रूप में यह लिखते हैं कि लोकोपकार में संलग्न यक्ष ने पत्नी के प्राणों की रक्षा के निमित्त अपनी अलौकिक वाणी से सन्देश दिया। यक्ष प्रिया ने भी वह सन्देश सुना और प्रसन्नता को प्राप्त हुयी। कवि लिखते हैं कि कौन ऐसा है जिसकी प्रार्थना महापुरुष से किये जाने पर विफल हुयी हो।[2]

---

1. कच्चित् सौम्य ! व्यवस्तिमिदं बन्धुकृत्यं त्वया मे
   प्रत्यादेशात्त खलु भरतो धीरतां कल्पयामि।
   निःशब्दोऽपि प्रदिशसि जलं याचितश्चातकेभ्यः
   प्रत्युक्तं हि प्रणपिषु सतामीप्सितार्थ क्रियैव।। मे.दू. (उत्तर) 53
2. तं संदेशं जलधरवरो दिव्यवाचाऽचचक्षे
   प्राणांस्तस्या जनहितरतो रक्षितुं यक्षवध्याः।
   प्राप्योदन्तं प्रमुदितमनाः साऽपि तस्थौ स्वभर्तुः
   केषां न स्यादभिमतफला प्रार्थना ह्युत्तमेषु।।मे.दू. (उत्तर) 53

जैन मेघदूतम् की कथावस्तु जैनधर्म के बाइसवें तीर्थंकर श्री नेमिनाथ के जीवन चरित्र से सम्बन्धित है। यह कहा जाता है कि इनका प्रादुर्भाव महाभारत काल में हुआ था। श्री नेमिनाथ अन्धक वृष्णि के ज्येष्ठ पुत्र समुद्र विजय के पुत्र और भगवान् श्री कृष्ण के चचेरे भाई थे। श्री नेमिनाथ ने ऐसा आचरण किया जिससे सम्पूर्ण प्राणियों पर करुणा की वर्षा हुयी। महाराज समुद्र विजय ने अपने पुत्र नेमिनाथ का विवाह उग्रसेन की पुत्री राजुमती से करना निश्चय किया। महाराज अपने पुत्र के विवाह में बहुत बड़ी संख्या लेकर बारातियों के साथ उग्रसेन की राजधानी में पहुँचे। जब बारात वहाँ पहुँची तो नेमिनाथ जी को अनेक पशुओं की करुण आवाज सुनाई दी। इससे उनके मन में जिज्ञासा हुई कि ये पशु इस तरह क्यों रो रहे हैं। इस सम्बन्ध में जब उन्होंने पता किया तो उन्हें यह ज्ञात हुआ कि ये सभी पशु उनकी बारात के भोजन के लिए लाये गये हैं और इन सभी का वध किया जायेगा। यह सुनकर नेमिनाथ के मन में परम करुणा उत्पन्न हुयी और इन्होंने यह विचार किया कि जब मेरे इस उत्सव में करुणा का एक ऐसा दृश्य होगा तब भला मेरे जीवन में मंगल कैसे सम्पादित होगा। इस विचार से उन्होंने विवाह करने का विचार त्याग दिया और यह निश्चय किया कि अब वे संसार का परित्याग करके वन की ओर जायेंगे। वन में जाकर वे तपस्या करेंगे और उस तपस्या के माध्यम से संसार के कल्याण में प्रवृत्त होंगे।

इस खण्डकाव्य का विभाजन चार सर्गों में किया गया है। प्रथम सर्ग की कथा का आरम्भ करते हुए कवि ने श्री नेमिनाथ की बाल क्रीड़ा का वर्णन किया है और उनके पराक्रम का वर्णन किया है। इसके पहले श्लोक में ही यह कहा गया है कि तीनों लोकों के उपदेशक और अत्यन्त

बुद्धिमान् नेमिनाथ संसार के भोगों का त्याग करके और अपनी सम्पत्ति का सभी में वितरण करके तपस्या के निमित्त श्रेष्ठ पर्वत रैवतक पर पहुँचते हैं।[1] कथा में आगे लिखा गया है कि जब विवाह के अवसर पर नेमिनाथ ने अपनी पत्नी राजमती का परित्याग किया तब वह अत्यन्त दुखित हुयी। वह यह नहीं समझ पायी कि उसके स्वामी नेमिनाथ ने अकारण ही उसका परित्याग क्यों किया है और किस कारण से उसे इस अवस्था में छोड़ दिया है। वह दुःखित होती हुयी आकाश मे छाये हुए मेघमाला का दर्शन करती है और फिर उस मेघ का स्वागत करती है। वह मेघों को देखकर कहती है कि आप कुशल तो हैं, आपका शरीर रोग रहित तो है, जिस प्रकार से राजहंस और राजहंसी सरोवर की सेवा करते हैं उसी तरह से गर्जना और विद्युत से आपकी सेवा तो हो रही है। जिस प्रकार से आकाश मार्ग में सूर्य निर्वाध गति से चल रहा है उसी प्रकार से आपकी करुण धारा में कोई बाधा तो नहीं है। जैसे रजोगुण की वृद्धि करके परमेश्वर विश्व का सृजन करता है उसी तरह रजस् अर्थात् धूल को शान्त कर विश्व सृजन करते हैं। आप परमेश्वर की भाँति परम पावन हैं।[2]

---

1. कश्चित्कान्तामविषय सुखानीच्छुरत्यन्तधीमा–
नेनोवृत्तिं त्रिभुवनगुरुः स्वैरमुज्झाञ्चकार।
दानं दत्तवासुरतरुरिवात्युच्चधामारुरुभुः
पुण्यं पृथ्वीधरवरमधो रैवतं स्वीचकार।। जै.मे.दू. (1)–1
2. विश्वं विश्वं सृजसि रजसः शान्तिमापादयन् यः
संकोचेन क्षपयसि तमः स्तोममुनिनिह्नुवानः।
स त्वं मुञ्चन्नतिशयनतशयनतस्त्रायसे धूमयोने।
तद्देवःकोऽप्यभिनवतमस्त्वं त्रयीरूपधर्त्ता।। वही, ।।

इस काव्य के द्वितीय सर्ग में वसन्त ऋतु का वर्णन किया गया है। इस वर्णन में श्री नेमिनाथ के बाल सुलभ चरित्र का वर्णन है। वसन्त ऋतु आने पर वे अपनी युवावस्था के अनुरूप उसमें आनन्द का अनुभव करते हैं। इस वर्णन में वनों, उपवनों और सरोवरों की शोभा अत्यन्त रमणीय रूप में प्रस्तुत की गयी है। इसके बाद इस कथानक में राजमती श्री नेमिनाथ और कृष्ण की वसन्त लीला का वर्णन करके राजोमती एक बार यह वर्णन करती हुयी मूर्च्छित हो जाती है और पुनः सखियों द्वारा सचेत किये जाने पर अपनी कथा कहती हुई ग्रीष्म ऋतु का वर्णन करती है और ग्रीष्म ऋतु के वर्णन के पश्चात् वह श्री नेमिनाथ की लीला उपवन में जल क्रीड़ा का वर्णन करती हैं।[१]

---

1. तत्रान्यत्रोत्तरसरिसरिद्वापितोयेषु चैष
क्रीड़ां कर्तु रतिवशवशावृन्दवर्ती युगालः।
मृदनन् पदभ्यां नलिननिकरं नीरपूरं करेणो–
दस्यन् पश्यन्नधिमदमुपाक्रंस्त हस्तीवशस्तः।।
नाड़ी क्वापि क्वचन घटिका मामेकं क्वच्चिच
दित्रान् क्वापि क्वचिदपि दिनं पक्षिणं गर्भकं च।
स्थायं स्थायं सलिलनिलये तीव्रतापोपशान्त्यै
शौरिर्मऽपि हि रतिरसे दीर्घिकायां ममज्ज।।
तस्यां श्रोणिद्वयपयसि स्मरेपडकेरुहायां
रत्नश्रेणीखचितनिचितस्वर्णसोपानकायाम्।
हर्षात् खेलन्सह सहचरीरत्नवारेण तारा–
चक्रेणेवाभ्रमडुपतिर्मेरुमन्वेष नेमिम्।। जैन.मे.दू. (2)–40,41,42

तीसरे सर्ग की कथा में श्री नेमिनाथ के विवाह उत्सव और गृहत्याग का वर्णन किया गया है। राजमती जलकेलि कर उसमें से निकले हुए श्री नेमिनाथ की शोभा का वर्णन करती हैं। श्री कृष्ण और उनकी पत्नियाँ नेमिनाथ को पाणिग्रहण करने हेतु समझाते हैं। जिसे नेमिनाथ स्वीकार कर लेते हैं। तब श्रीकृष्ण महाराज उग्रसेन से राजीमती के विवाह की अनुमति प्राप्त करते हैं। पूरे नगर में विवाह का उत्सव मुखरित हो जाता है। वर और वधू दोनों पक्ष के अतिथि पधारते हैं सभी के मन में यह व्यग्रता है कि वे नेमिनाथ का विवाह देख सकें। राजीमती कहती हैं कि वर के रूप में आये हुए नेमिनाथ को देखने के लिए मैं गवाक्ष में खड़ी होती हूँ और उस समय नेमिनाथ के दर्शन पाकर मैं इतनी अधिक मोहासक्त हो जाती हूँ कि कुछ देर के लिए स्वयं को भूल जाती हूँ तब मैं स्वयं से यह प्रश्न करती हूँ कि मैं कौन हूँ, क्या कर रही हूँ और यह कहती हुयी भी मैं कुछ समझ नहीं पा रही हूँ।[1] राजीमती कहती हैं कि उसी समय उसका दाहिना नेत्र फड़का। इससे वह अमंगल की स्थिति में पहुँची। उसी समय नेमिनाथ को बरातियों के भोजन के लिए लाये गये पशुओं का आर्तनाद सुनाई दिया। श्री नेमिनाथ ने जब उन पशुओं को रुदन करते हुए देखा तो उन्होंने उन्हें बन्धन मुक्त करने के लिए कहा और नेमिनाथ की इस इच्छा पर पशुओं को बन्धन मुक्त करने के लिए कहा तब नेमिनाथ की इस इच्छा पर पशुओं को बन्धन मुक्त कर दिया।

---

1. मोहोदन्वान्मम निशमनं तस्य जैवातृकस्य
व्यातन्वत्याः कथमपि तथा तत्र चैधिष्ट पुष्ट।
कोऽयं काऽहं क्व किमु विदधामीति तद्वीचिमाला–
लोजच्चेताः क्षणमनजगे नो यथा जाड्समाप्ता।। जैन मे.दू. (3), 39

इस काव्य के चतुर्थ सर्ग में मुख्य रूप से राजीमती के द्वारा विरहित स्त्रियों का वर्णन किया गया है। जब श्री नेमिनाथ के वियोग से राजीमती विरहित हुयीं तो उन्हें उनकी सखियों ने समझाया कि नेमिनाथ सामान्य व्यक्ति नहीं हैं। फिर भी वह मेघ के द्वारा अपनी विरहावस्था का सन्देश उन तक पहुँचाने का प्रयत्न करती हैं। वह कहती हैं कि जब वे शमजन्य सुख का अनुभव करने के बाद बैठे हों तब तुम उन्हें मेरा सन्देश देना और कहना कि आपने जिस स्त्री को पहले स्वीकार करके सभी स्त्रियों का मुकुट मणि बना दिया था उसे अब भला आप क्यों परित्यक्त कर रहे हैं। इस तरह वह बाद में विस्तार से अपना सन्देश कहती हैं। अन्त में जब उसकी सखियाँ बार-बार यह समझाती हैं कि यह शान्ति का दूत है स्त्रियों के किसी आकर्षण से वह बंध नहीं सकता है। उसने अपने चरित्र की ऊँचाई को प्राप्त कर लिया है जिससे निश्चय है कि संसार की मोह तरंग इसे बाँध नहीं सकती है। यह सुनकर वह राजीमती पति ध्यान में निमग्न हो गई और बाद में उसने भी पति की तरह ही संसार के राग-द्वेष का परित्याग किया और कुछ दिनों के पश्चात् वह मुक्ति रूपी परमानन्द को प्राप्त करके परम सुख की अधिकारिणी बनी।[1] इस रूप में यह काव्य शृंगार की गाथा से आप्लावित होकर भी शान्ति के समापन में पहुँचा।

---

1. सध्रीचीनां वचनरचनामेवमाकर्ण्य साऽथो
   पत्युर्ध्यानादवहिततमतिस्ततन्मयत्वं तथाऽऽपत्।
   सङ्ख्याताहैरधिगतमहानन्दसर्वस्वसद्मा
   तस्माद्भेजेऽनुपमिति यश शाश्वतीं सौख्यलक्ष्मीम्।। जै0मे0दू0(4), 42

३- देवोपासना- (क)- पवनदूतमः, विष्णु, शिव सूर्य आदि-

पवनदूत खण्ड काव्य में अनेक देवताओं को किसी न किसी रूप में स्मृत किया गया है। इसमें विष्णु की उपासना का अनेक स्थानों पर उल्लेख है। एक स्थान पर यह सङ्केत आया है कि कवि धोयी के समय दक्षिण और बङ्गाल में विष्णु तथा शिव के कलात्मक मन्दिर थे। गौड़ राजसेन के वंशीय राजाओं ने विष्णु का मन्दिर बनवाया था। यद्यपि इस मन्दिर में अनेक देवता स्थापित थे तथापि उसमें विष्णु की प्रधानता थी।

कवि धोयी सेतु बन्ध में भगवान् शिव की उपासना का सङ्केत करते हैं कि हे पवन! तुम जब सेतु वन पहुँचोगे तो वहाँ पर क्रोध करती हुयी पार्वती के हाथों द्वारा खींचे गये सिर पर स्थित चन्द्रमा वाले भगवान् रामेश्वर के ऊँचे और पवित्र मन्दिर के दर्शन करोगे।[1] एक दूसरे स्थान पर सुह्य देश का सङ्केत किया गया है। इस सङ्केत में यह कहा गया है कि सुह्य देश गंगा से छालित है और उस देश में सेन कुलोपन्न भूपत्ति के द्वारा लक्ष्मी के साथ बिहार करने वाले भगवान् विष्णु निवास करते हैं। उनके समीप अपने हाथों में लीला कमल धारण किये हुए सुन्दर अप्सरायें ऐसा सन्देह उत्पन्न करती हैं मानों वे स्वयं लक्ष्मी होवें।[2]

---

1. क्रुध्यद्गौरीकर किससलयाकृष्ट चूडासुधांशो-
   र्द्रक्ष्यस्युच्चैः कुलमकलुषं तत्र रामेश्वरस्य। प.दू., पृ0 42
2. तस्मिन् सेनान्वयनृपतिना देवराज्यभिषिक्तो,
   देवः सुध्ये वसति कमलाकेलिकरो मुरारिः।
   पाणौ लीला कमलमसवृद् यत्समीपे वहन्त्यो,
   लक्ष्मीशङ्का प्रकृतिसुभगाः कुर्वते वाररामाः।। प.दू., पृ0 63

इसी प्रकार से एक स्थान पर कवि ने भगवान् शिव के धवल मन्दिर का वर्णन भी किया है। वे वर्णन करते हैं कि धनपति कुबेर के पर्वत से ऊपर धवल गृहों से युक्त भगवान् शिव का पवित्र और सुन्दर नगर मिलेगा, वहाँ पर वनितायें नक्षत्रों से मानों चन्द्रमा की कला का चिन्ह धारण करती हैं। इसी तरह से गंगा नदी के तट पर तुम सूर्य देव को प्रणाम करना और पार्वती के साथ जो अर्द्ध नारीश्वर हैं उनका भी दर्शन करना।[1] इस वर्णन में शिव के साथ-साथ सूर्य देव का स्मरण भी किया गया है और साथ ही साथ श्री राम के वंश रघुकुल का भी सङ्केत है।

एक दूसरे स्थान पर भी भगवान् विष्णु की प्रार्थना की गई है और शिव की उपासना का सङ्केत किया गया है। वहाँ पर विष्णु से प्रार्थना करते हुए यह कहा गया है कि हे प्रभु! आप दांयें-बायें, आगे तथा पीछे, सर्वत्र अपने हाथ में धनुष लिये हुए संसार के स्वमी विष्णु हो। मैं भक्ति से नत होकर आपको प्रणाम करता हूँ इसलिए आप मुझ पर कृपा करें। इसी तरह से एक अन्य संदर्भ में भगवान् शंकर के उस रूप का कथन किया गया है। जिसमें वे पार्वती के साथ विवाहोत्सव में अत्यधिक प्रसन्न हुए थे।

---

1. यातस्योर्ध्व धनपतिनगेनैव गौरैरगारैः
पश्येस्तस्मिन् नगरमनधं चारू चन्द्रार्द्धमौलैः।
यत्रानेकप्रियनखपदव्याजतो वाररामाः,
भर्त्तूर्भूषाशशधरकला चिन्हमङ्के वहन्ति।।
तत्रान्र्ध्य रघुकुलगुरुं स्वर्णदीतीरदेशे,
नत्वादेवं ब्रज गिरिसुतासं विभक्ततङगरम्यम्।
याते यस्मिन् नयन पदवीं सुन्दर भ्रुलतानां,
प्रौढ़स्त्रीणां गलति रमण प्रेम जन्माभिमानः।। पं.दू., पृ0 64,65
2. वृत्ते गौरी परिणय-विधौ पीवरप्रीतिभाजा,
सृष्टस्मेव त्रिपुरजमिना पुष्पकेतोर्नवस्य।
राजान्नस्तु प्रणयचतुरो दूरतः प्रेमबन्धः
पुण्येनस्यां तव चरणयोः केन संवाहनेऽपि।। वहीं पृ0 141

(ख) मेघदूत- शिव, पार्वती, राम आदि :-

मेघदूतम् खण्डकाव्य में भी देवताओं का स्मरण स्थान-स्थान पर किया गया है। यद्यपि इस खण्डकाव्य में भगवान् शिव को अनेक बार स्मरण किया गया है। सबसे पहले तो इसमें भगवान् राम का स्मरण इस रूप में है जिसमें यह कहा गया है कि यक्ष ने निर्वासित होने के बाद रामगिरि नामक पर्वत चोटी पर एक आश्रम बनाकर अपना निवास किया था।[1] जब यक्ष मेघ के लिए अलकापुरी जाने के मार्ग का वर्णन करता है तो मेघ से कहता है कि अलकापुरी के आगे एक बहुत बड़ा उद्यान स्थिति है। उस उद्यान में भगवान् शिव विराजमान हैं जिनके मस्तक पर स्थित चन्द्रमा को ज्योत्स्ना अपनी धवलिमा से चारों ओर शुभ्रता का प्रकाश करती रहती है।[2] इस कथन में भगवान् शिव की महत्ता का कथन किया गया है। इस खण्डकाव्य के एक दूसरे संदर्भ में भगवान् शंकर के महाकालेश्वर नाम का स्मरण है। यक्ष मेघ से कहता है कि जब तुम उज्जयिनी में पहुँचना तो वहाँ पर यदि किसी दूसरे समय में पहुँचना तब भी सायंकाल तक अवश्य ठहरना क्योंकि वहाँ पर सायंकाल के समय भगवान् महाकालेश्वर की अर्चना होती है। उस समय तुम वहाँ गम्भीर गर्जन करोगे तब तुम आरती में बजने वाले नगाड़े की ध्वनि का लाभ प्राप्त कर सकोगे।

---

1. यक्षश्चक्रे जनकतनयास्नान पुण्योदकेषु,
   स्निग्धच्छायातरुषु वसति रामगिर्याश्रमेषु।। मे.दू., 1
2. सन्तप्तानां त्वमति शरणं तत्पयोद! प्रियायाः।
   संदेशं मे हर धनपति क्रोध विश्लेषितस्य।
   गन्तव्या ते वसतिरलका नाम यक्षेश्वराणाम्
   बाह्योद्यान- स्थितहर शिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या।। मे.3, पृ0 श., 22

इस सन्दर्भ में भगवान् के महाकालेश्वर के स्वरूप की उपासना का आख्यान किया गया है और मेघ से कहा गया है कि तुम भगवान् की इस आरती के अवसर पर उपस्थिति होना।[1] जब मेघ और आगे चलेगा तो इस आरती के अवसर पर उपस्थित होना। जब मेघ और चलेगा तो उसे कनखल के समीप हिमालय से उतरी हुयी जान्हवी मिलेगी। कालिदास वर्णन करते हैं कि वह जान्हवी ऐसी है जो भगवान् शिव के जटा-जूट को इस तरह से पकड़े हुए है जिसमें मानो वह भगवती शिवा काउपहास कर रही है। इस सन्दर्भ में भगवती शिवा और जान्हवी का संकेत स्पष्ट रूप से किया गया है। आगे अन्य अनेकों सन्दर्भ में अनेकशः भगवान् शिव के विविध रूपों का ही वर्णन है जिससे यह अनुमान होता है कि कालिदास भगवान् शंकर के अनन्य उपासक हैं और बार-बार वे किसी न किसी रूप से शिव की वन्दना करते हैं। मेघ के लिए यह कहा गया है कि अलका में कुबेर के मित्र भगवान् शंकर निवास करते हैं इसलिए कामदेव भय के वशीभूत होकर मानो भ्रमर पंक्ति रूप धनुष की डोरी धारण नहीं करता।[2]

---

1. अप्यन्यस्मिञ्जलधर ! महाकालमासाद्य काले
   स्थातव्यं ते नयनविषयं यावदत्येति भानुः।
   कुर्वन् सन्ध्यावलिपटहतां शूलिनः श्लाघनीया
   मामन्द्राणां फलम विकलं लप्स्यते गर्जितानाम्।। मे.दू.(पूर्व),पृ0 89, 90
2. मत्वा देवं धनपतिसखं यत्र साक्षाद्वसन्तं
   प्रायश्चापं न वहति भयान्मन्मथः षट्पदज्यम्।
   सभ्रूभडगप्रहित-नयनैः कामिलक्ष्येष्वमोघै-
   स्तस्यारम्भश्चतुर-वनिता-विभ्रमैरेव सिद्धः।। वही (उत्तर) पृ0 183, 185

(ग) जैन मेघदूतम् –तीर्थंकर नेमिनाथ आदि :-

जैन मेघदूत के प्रारम्भ में नेमिनाथ को एक ऐसे धार्मिक पुरूष के रूप में स्थापित किया गया है जो अध्यात्म की प्राप्ति के लिए संसार का मार्ग त्याग देते हैं। इस वर्णन के क्रम में इसलिए प्रारम्भ में ही जब नेमिनाथ का वर्णन किया गया है तब उन्हें कृष्ण का अनुज बताया गया है और यह कहा गया है कि नेमिनाथ ने अपने तप से जिस प्रकार से पुण्य प्राप्त किया उससे उन्हें कृष्णत्व की प्राप्ति हुयी। बाद में संकेत रूप में कहीं हरि और कहीं पर विष्णु आदि की चर्चा की गयी है किन्तु मुख्य रूप से तीर्थङ्कर नेमिनाथ का महत्त्व ही इस काव्य में वर्णित किया गया है।

नेमिनाथ के गुणों का वर्णन करते हुए इस काव्य के प्रारम्भ में यह वर्णन है कि ब्रह्मा प्रतिदिन प्रभु नेमिनाथ के गुणों का वर्णन करते हैं किन्तु दिन और रात्रि में निरन्तर गुणों का गान करने पर ही इनके गुणों की पूर्ण गणना नहीं हो सकती है। भगवान् नेमिनाथ ने उसी तरह से सांसारिक आशक्ति के तुच्छ भाव को छोड़ दिया था जैसे सर्प अपनी केचुल का परित्याग कर देता है। समुद्र विजय के पुत्र अपार तेजराशि के गुणों की खान अपने अमित ज्ञान से संसार के सभी वस्तुओं को जानने वाले श्री नेमिनाथ तीर्थङ्कर में बाइसवें तीर्थङ्कर के रूप में जाने जाते हैं।[1]

---

1. सारस्वनैर्मनुपरिमितैः सूचितस्यतस्य सूनुः
श्रीमान्नेमिर्गुणगणखनिस्तेजसां राशिरस्ति।
यं द्वाविंशं जिनपतिमिह श्रोणिखण्डे प्रबुद्धा
दिव्यज्ञानातिशयकलिताशेष वस्तु दिशन्ति।। जै.मे.(प्रथम) श्लो. 15

४. वास्तुसामग्री- क-विवेच्य काव्यों में मानव भवन

प्रासाद, अट्टालिका-

पवनदूतम्, मेघदूतम् और जैन मेघदूतम् में संकेत रूपों में प्रासादिकों और अट्टालिकाओं का वर्णन किया गया है। मेघदूतम् में जब मेघ को अलकानगरी प्रेषित किया गया है तो यक्ष के द्वारा यह कहा गया है कि तुम जिस अलका में जाओगे वह अलका नगरी यक्षेश्वर कुबेर की राजधानी है। उस नगर के बाहर एक बहुत बड़ा उद्यान है जिसमें शिव स्थापित हैं। उन शिव के मस्तक के ऊपर चन्द्रमा के प्रकाश से वहाँ के महल धवलित हो रहे हैं।[1] इस वर्णन में जहाँ अलका के महलों का संकेत है वहीं पर उन महलों की भव्यता भी संकेतित है।

इसी प्रकार से एक दूसरे सन्दर्भ में यह उल्लेख किया गया है कि मेघ तुम जिस अलका में जा रहे हो वहाँ पर ऐसे भव्य महल हैं जिनमें विद्युत लता के समान स्त्रियाँ निवास करती हैं। जिन प्रासादों में चित्रशालायें बनी हैं, जहाँ पर नृत्य गीत के लिए मृदंग बनाये जाते हैं जिन महलों का फर्श मणियों से रेखांकित है, जहाँ पर कर्ण प्रिय संगीत बजता रहता है। ऐसे उन भव्य प्रसादों में पहुँचकर तुम अपने गम्भीर घोष से मृदंग वाद्य की तुलना कर सकोगे।[2]

---

1. सन्तप्तानां त्वमसि शरणं तत्पयोद ! प्रियायाः
   सदेशं मे हर धनपतिक्रोधविश्लेषितस्य।
   गन्तव्या ते वसतिरलका नाम यक्षेश्वराणाम्
   बाह्योद्यान–स्थितहर शिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या।।मे.दू.(पूर्व) श्लोक–7
2. वही (उत्तर), 1

एक स्थान पर अलकापुरी के भवन के शिखरों का अर्थात् अट्टालिकाओं का भी उल्लेख है। कहा गया है कि उन भवनों में हंस पंक्तियाँ रहती हैं, मयूर नित्य प्रति ध्वनि करते रहते हैं, चन्द्रमा की ज्योत्सना से अन्धकार निरन्तर तिरोहित रहता है। वहाँ उन भवनों की अट्टालिकायें स्फटिक मणियों से जड़ी हुयी हैं, वहाँ पर तारे ऐसे चमकते हैं जैसे उन भवन अट्टालिकाओं में धवल पुष्पों का आस्तरण बिछा दिया हो। यक्ष कहता है कि मेघ! तुम वहाँ अवश्य जाना।[1] इसी प्रकार का संकेत एक भव्य आगार का ऐसा भी है जिसमें स्वयं यक्ष का निवास स्थान है। वह अपने निवास स्थान का परिचय देता हुआ कहता है कि जब तुम अलकापुरी में पहुँचोगे तो कुबेर के घर से उत्तर दिशा की ओर तुम्हें मेरा घर दिखाई देगा। मेरे द्वार पर तोरण बँधा होगा जो इन्द्र धनुष के समान प्रतीत हो रहा होगा। उस मेरे भवन के सामने एक छोटा सा मन्दार वृक्ष भी लगा होगा जिसे मेरी प्रिया ने पालकर बड़ा किया है।[2]

---

1. यस्यां यक्षाः सितमणिमयान्येत्य हर्म्यस्थलानि
ज्योतिश्छाया कुसुमरचितान्युत्तमस्त्रीसहायाः।
आसेवन्ते मधुरतिफलं कल्पवृक्ष प्रसूतं
त्वद्गम्भीरध्वनिषु शनकैः पुष्टकरेष्वाहतेषु।। मे.दू.(उत्तर), 5
2. तत्रागारं धनपतिगृहानुत्तरेणास्मदीयं
दूराल्लक्ष्यं सुरपति धनुश्चारूणा तोरणेन।
यास्योपान्ते कृतकतनयः कान्तया वर्धितो मे
हस्तप्राप्यस्तवकनमितो बालमन्दार–वृक्षः।। मे.दू. (उत्तर), 14

इसी प्रकार से पवनदूत खण्डकाव्य में प्रारम्भ में ही कनक नगरी का वर्णन किया गया है। उस नगरी के वर्णन में महलों का और अट्टालिकाओं का संकेत है। कवि धोयी जब गन्धर्व नगरी का वर्णन करते हैं जो लिखते हैं कि पृथ्वी पर एक सुन्दर मलय पर्वत है। उस मलय पर्वत पर बड़े-बड़े सुन्दर भवन बने हुए हैं, उन भवनों के शिखर स्वर्ग जटित हैं जैसे किसी देवलोक नगर के भवन होवें। एक दूसरे संकेत में उरगपुर का वर्णन है और वहाँ के महल और उन महलों के झरोखों का वर्णन भी कवि धोयी ने किया है। अपने वर्णन में कवि लिखते हैं कि उस नगर के भवन और उन भवनों के झरोखे से इस प्रकार की शीतल वायु प्रदान करते हैं जिससे वहाँ की वे युवतियाँ सुख का अनुभव करतीं हैं, जो रतिश्रम से श्रमित हो गयीं हैं।[२]

इस प्रकार से जैन मेघदूतम् में भवनों का संकेत तो अवश्य किया गया है किन्तु वहाँ पर भवनों के विषय में विस्तार से जानकारी नहीं है।

---

1. अस्ति श्रीमत्यखिलवसुधासुन्दरे चन्द्रनाद्रौ,
   गनधर्वार्णा कनकनगरी नाम रम्यो निवासः।
   हैमैर्लीलाभवनशिखरैरम्बरं व्यालिखद्भि,
   र्धत्ते शाखानगरगणनां यः सुराणां पुरस्य।। प.दू. -1
2. सम्भोगान्तेश्लथभुजलतानिः सहानां वधुनां
   व्याधुन्वन्तोऽनुचितकबरीभार मव्याजमुग्धम्।
   अस्मिन् सद्यःश्रमजलनुदः सौधजालैरुपेत्य,
   प्रत्यासन्ना मलयमरुतस्तालवृन्ती भवन्ति।। प.दू.-9

एक स्थान पर बाईसवें तीर्थंकर के जन्म का संकेत किया गया है। वहाँ पर यह वर्णन है कि छप्पन दिक् कुमारियों की उपस्थिति में पुत्र सहित माता का सूतिका कर्म सम्पादित किया गया है। ये दिक् कुमारियाँ स्वर्ण कदली के घरों में निवास करतीं थीं।[1] इस प्रकार से इस संकेत में उन दिक् कुमारियों का संकेत है जो स्वर्ण कदली के घरों में निवास करतीं थीं और यह संकेत है कि इनके निवास स्वर्ण कदली के बने थे। इससे अधिक उन आवासों के विषय में और कोई जानकारी नहीं है।

इसी प्रकार से जब नेमिनाथ के मंगल के अवसर पर मंगल गीत गाये गये तो द्वारिका नगरी में इस प्रकार का मंगल चारो ओर फैल गया जिससे ऐसा प्रतीत हुआ कि द्वारिका नगरी में रहने वाले जो निर्धन हैं उनके घरों में भी मंगल का अभाव नहीं रहा।[2] इस तरह से इस खण्डकाव्य में जिन घरों का संकेत है उनमें एक आवास स्वर्ण निर्मित है तो दूसरे प्रकार के आवास ऐसे हैं जिनमें अकिञ्चन निवास करते हैं किन्तु प्रतीत यह होता है कि दानों प्रकार के निवासों में आनन्द और आमोद परिपूर्ण था।

---

1. यस्य ज्ञात्वा जननमनघं कम्पनादासनाना–
   मास्यां तासांदिव न सहतां पूज्यपूजाक्षणेऽस्मिन्
   दिक्कन्याः षट्शरपरिमिताः सांगजाया सवित्रयाः।
   सम्यक् चक्रुः कनककदलीसन्द्मा मूतिकर्म।। जै.मे.(प्रथम सर्ग) पृ0 11
2. आमोदेनानुपरततरोऽहर्दिवं यादवींनां
   विष्वग्व्यापी पुरूरथ पुरेऽभूदुलूलध्वनिर्यत्।
   मन्ये धन्येतरनरकुलेष्वप्यनुत्साहधाम्नां
   शोकानां तत्प्रति हतिजुषां तन्ननाशावकाशः।। जै.मे.(तृ.स.) पृ. 83

क्रीड़ा उपवन, वापी, सरोवर आदि :-

विवेच्य खण्डकाव्यों में क्रीडा, उपवन, वापी और सरोवरों का संकेत स्थान-स्थान पर है। मेघदूतम् में यक्ष जब मेघ का मार्ग निरूपित करता है तो कहता है कि उस अलकानगरी में घरों में अपार सम्पत्ति भरी हुयी है। उसमें रहते हुए कामुक जन अप्सराओं से वार्तालाप करते हुए आनन्द का अनुभव करते हैं। वे कुबेर के यश का गान करते हैं और किन्नरों के साथ वैराज नामक उद्यान का आनन्द लेते हैं।[1] इस रूप में वहाँ क्रीड़ा उद्यान का संकेत है। जो किन्नरों के लिए आनन्द प्राप्ति का स्थल है। इसी प्रकार एक अन्य स्थान पर उस स्थान का वर्णन किया गया है जिसे केलिगृह कहा जा सकता है। यक्ष कहता है कि मेरे भवन के पास ही मणियों की वेदिका वाली स्फटिक मणियों की पीठ से सुशोभित एक वास यष्टि है। पहले मेरी प्रिया अपने हाथों के पहने हुए ककंणों के बजते हुए ताली बजाकर सायंकाल मयूर का नर्तन कराती थी। अर्थात् उस केलिगृह में हम बैठते थे और मेरी प्रिया अपने हाथों की ताली बजाती थी जिससे कङ्कण ध्वनित होता था और तब वह मयूर आकर बैठता था। इस रूप में यक्ष ने केलिगृह का संकेत किया है।[2]

---

1. अक्षप्यान्तर्भवन-निधयः प्रत्यहं रक्त-कण्ठै-
   रूद्गायद्भिर्धनपतियशः किन्नरैर्यत्र सार्धम्।
   वैभ्राजाख्यं विबुधवनितावारमुख्यासहाया,
   बद्धालापा बहिरूपवनं कामिनी निर्विशन्ति।। मे.दू.(उत्तर)10
2. तन्मध्ये च स्फटिकफलका काञ्चनी वासयष्टि-
   मूले बद्धा मणिभिरनति-प्रौढ-वंश-प्रकाशैः।
   नालैःशिञ्जावलयसुभगैर्नर्तितःकान्तया मे
   यामध्यास्ते दिवसविगमे नीलकण्ठः सुहृद्वः।। मे.दू.(उत्तर) 18

पवनदूत खण्डकाव्य में भी इस प्रकार के संकेत हैं। वहाँ पर यह वर्णन किया गया है कि काञ्ची नगरी के आगे जो कावेरी नदी है उसके किनारे कुञ्ज बने हुए हैं। वहाँ पर अनेक प्रकार के पक्षी कलरव करते हैं और काञ्ची नगरी की कामनियाँ उन कुञ्जों में बिहार करती हैं।[१] इस रूप में भी कावेरी के नदी तट पर केलिकुञ्जों का संकेत किया गया है।

इस प्रकार से एक दूसरे सन्दर्भ में सरोवर का संकेत भी किया गया है और यह कहा गया है कि हे बायु ! तुम जब यात्रा करोगे तो तुम्हें एक सरोवर मिलेगा। वह सरोवर कभी मार्कण्डेय ऋषि के द्वारा निर्मित कराया गया था। उस सरोवर के चारों तरफ शाल के वृक्ष लगे हुए हैं और उन वृक्षों से वह स्थान सुन्दर बन गया है। इस सरोवर में स्नान के तट पर अप्सरायें नृत्य करती हैं और मृग निरन्तर वहाँ पर विहार करते हैं। इसलिये वह सरोवर दर्शनीय है और शान्ति प्रदान करने वाला है।[२]

---

1. हित्वा काञ्चीमविनयवतीं भुक्तरोधीनिकुञ्जां,
   तां कावेरीमनुसर खगश्रेणिवाचालकूलाम्।
   कान्ताश्लेषादपि खलु सुखस्पर्शमिन्दुत्विषोऽपि,
   स्वच्छं भिक्षाप्रवणमनसोऽप्यम्बु यस्या लघीयः।। प.दू., पृ. 47
2. रम्योपान्तं सरलतरुभिर्भाण्डकर्णे सरस्तद्,
   गच्छेः पञ्चाप्सर इति द्रुतप्रौढतापं मघोनः।
   यत्राद्यापि त्रिदशमरुणी मुग्धसंगीतिमाला,
   पूर्वप्रेमापगतहरिणश्रेणिमुत्कण्ठयन्ति।। प.दू., श्लोक, 19

जैन मेघदूतम् में भी इस प्रकार के संकेत हैं। वहाँ पर एक ऐसे उद्यान का वर्णन किया गया है जिसमें यह कहा गया है कि भ्रमर रूपी कलियों वाले कमल ही जिसके नेत्र हैं, कमलों से युक्त वापियाँ ही जिसके मुख हैं, उज्जूवल पुष्प ही जिसकी मुस्कारहट हैं फूलों की कली ही जिसका प्रकट अनुराग है। फूलों से गिरता हुआ पुष्प रज ही जिसका कुमकुम लेप है, नाना प्रकार के पत्ते ही जिसके वस्त्र हैं। इस प्रकार की वन लक्ष्मी उस उद्यान में है।[1] यहाँ पर उद्यान के साथ-साथ वापी का भी संकेत किया गया है। इसी तरह से क्रीड़ा का सन्दर्भ भी है। श्री कृष्ण और नेमिनाथ के जल क्रीड़ा का सन्दर्भ भी है। श्री नेमिनाथ और श्रीकृष्ण ने तालाबों में, सरिताओं में, वापियों में मदमत्त स्त्रियों के साथ जल क्रीड़ा की। वे आनन्दपूर्वक उन तालाबों में बिहार करते रहे।[2] इस प्रकार के इस संदर्भ में भी तालाबों और वापियों का संकेत किया गया है।

---

1. ताराचारिभ्रमरनयनतप्पयवद्दीर्घिकास्या
   किञ्चिद्धास्यामितसितसुभा शुडिगकाव्यक्तरागा।
   ताभ्यां तत्र प्रसवजरजः कुडकुमस्यन्दलिप्ती
   नानावर्णच्छदनिवसना प्रैक्षि वानेपलक्ष्मीः।।जै.दू.(द्वि.सर्ग.)श्लो.–15
2. तत्रान्यत्रोत्तरसरिसरिद्वापितोयेषु चैष
   क्रीड़ां कर्तु रतिवशवशावृन्दवर्ती सुगात्रः।
   मृद्नन् पदभ्यां नलिननिकरं नीरपूरं करेणो–
   दस्यन् पश्यन्नधिमदमुपाक्रंस्त हस्तीव शस्तः।। जै.दू.(द्वि.सर्ग.)श्लो.–40

(ख) देवभवन, शिव मन्दिर, विष्णु मन्दिर, सूर्य मन्दिर आदि :-

सन्दर्भित खण्डकाव्यों में स्थान-स्थान पर देवताओं के मन्दिरों के निर्माण के संकेत किये गये हैं। सर्वप्रथम पवनदूतम् में यह संकेत किया गया है कि जब तुम यात्रा करोगे तो सबसे पहले तुम्हें भगवान् शंकर के दर्शन करने हैं। कहा गया है कि तुम्हें सेतुबन्ध रामेश्वर का स्थान मिलेगा जहाँ पर भगवान् शंकर का उत्तुङ्ग मन्दिर है और उस मन्दिर में भगवान् शिव के मस्तक पर चन्द्रमा विराजमान हैं इसलिए वह स्थान पवित्र है और तुम्हारे लिए दर्शनीय है।[१]

इसी तरह एक दूसरे सन्दर्भ में भगवान् विष्णु के मन्दिर का संकेत किया गया है। कहा गया है कि सेन कुल में उत्पन्न हुए राजा ने सुह्म देश में लक्ष्मी के साथ बिहार करने वाले भगवान् विष्णु का मन्दिर बनवाया है। इसी प्रकार से गंगा तट पर सूर्य मन्दिर का भी संकेत इस खण्डकाव्य में किया गया है।[२]

---

1. क्रुध्यद्गौरीकरकिसलयाकृष्ट चूडासुधाशो
   र्द्रक्ष्यस्युच्चैः कुलमकलुषं तत्र रामेश्वरस्य।
   मध्यं यत्र त्रिबलिविषमं वारसीमन्तिनीनां,
   हस्तोत्कम्पं कथयति विधेः सृष्टकाञ्चीपदस्य।। प.दू. श्लो. 11
2. तत्रानध्यं रघुकुलगुरुं स्वर्गदीतीरदेशे,
   नत्वादेवं ब्रज गिरिसुतासं विभक्तडगरम्यम्।
   याते यस्मिन् नयन पदवीं सुन्दर भ्रूलतानां,
   प्रौढस्त्रीणां गलति रमण प्रेम जन्माभिमानः।। प.दू.,श्लोक.–30

मेघदूतम् में एक ऐसा संकेत है जिसमें महाकालेश्वर नामक स्थान का वर्णन किया गया है और यह कहा गया है कि सायंकाल वहाँ पर विराजे हुए भगवान् शिव की आरती होती है। वहाँ पर भगवान् शिव के गण हैं और भगवान् शिव के चारों ओर एक सुन्दर उद्यान है। जब वहाँ आरती स्तवन और वन्दन होता है तो उस समय वहाँ की नर्तकियाँ नृत्य करती हैं जिससे वे श्रीमति होती हैं। जब तुम जाओगे तो तुम्हारे साथ बहने वाली शीतल पवन से वे आनन्द का अनुभव करेंगी और इस तरह तुम उनकी दृष्टि के पात्र बनोगे।[1]

इसी तरह से एक अन्य स्थान में कार्तिकेय के महत्व का अङ्कन किया गया है। वे कार्तिकेय भगवान् शिव के समान ही महत्वपूर्ण हैं इसलिए उनके मन्दिर में भी मेघ को जाने के लिए निर्देशित किया गया है।[2] इन दोनों सन्दर्भों में यद्यपि मन्दिर शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है तथापि शिव के गणों की शिव के पूजा स्तुति की चर्चा करने का अभिप्राय यही है कि वहाँ शिव का पवित्र मन्दिर है। महाकालेश्वर में सायं की आरती और उसके साथ मेघ के गर्जन का अभिप्राय यही है कि भगवान् शिव के मन्दिर में आरती तथा नगाड़े की ध्वनि बजती है। कार्तिकेय के पूजन के लिए मेघ से कहा गया है कि तुम स्वयं को फूल सा बनाकर आकाश गंगा के जल से कार्तिकेय को स्नान कराना जिससे वे प्रसन्न होवें, इसमें भी मन्दिर का संकेत है।

---

1. भर्तुः कण्ठच्छविरितिगणैः सादरं वीक्ष्यमाणः
   पुण्यं यायास्त्रि भुवनगुरो धामि चण्डीश्वरस्य।
   धूतोद्यानं कुवलयरजोगन्धिभिर्गन्धवत्या–
   स्तोयक्रीडन्निरतयुक्तिस्नानतिक्तैर्मरुद्भिः।। मे.दू.(पूर्व.)श्लो. 33
2. तत्र स्कन्दं नियतवसतिं पुष्पमेघीकृतात्मा
   पुष्पासारैः स्नपयतु भवान्व्योमगङगजलार्द्रैः।
   रक्षाहेतोनवशशिभृता वासवीनां चमूना–
   मत्यादित्यं हुतवहमुखे संभृतं मद्धि तेजः।। मे.दू.(पूर्व.)श्लो. 43

काव्य कवि का एक ऐसा कर्म है जिसमें वह अपने वर्णन के द्वारा न केवल व्यक्तियों की प्रवृत्तियों को समेटता है अपितु वह अनेक प्रकार के सामाजिक सन्दर्भों को भी अपने काव्य में उपस्थापित करता है। इस प्रकार के वर्णन में कवि द्वारा मनुष्य और उसकी सहचरी प्रकृति भी सम्मिलित होती है। इसमें कवि नगरों का वर्णन करता है, उसके भवनों का वर्णन करता है, उद्यानों का वर्णन करता है, उपवनों का वर्णन करता है, सरिताओं का वर्णन करता है और प्रकृति के अन्य कारकों का भी वर्णन करता है। संस्कृत काव्य परम्परा में जिन खण्डकाव्यों को प्रस्तुत किया है उन्होंने अपने इन काव्यों में भवनों का, अट्टलिकाओं का, उपवनों का, वापी और तड़ागों का चित्रण विस्तार से किया है। मेघदूत में ज़ब यक्ष मेघ को अलकापुरी का परिचय बताता है तब वह अलकापुरी के भवनों का वर्णन करता हुआ कहता है कि उस नगरी में जो बड़े-बड़े भवन हैं वे उसी प्रकार से ऊँचे हैं जैसे तुम्हारी ऊँचाई है। वहाँ के भवनों के ऊँचे-ऊँचे शिखर ऐसे प्रतीत होते हैं, मानो वे आकाश का स्पर्श कर रहे हों। इतना ही नहीं वहाँ के वे प्रासाद जो देवमन्दिर के रूप में स्थापित हैं वे भी अपनी उच्चता से इतने ऊँचे हैं मानो गगन का स्पर्श कर रहे होवें। उन भवनों में मृदंगों की ध्वनियाँ उत्पन्न हो रही हैं और उन भवनों के फर्श मणियों से जड़ित हैं।[1]

---

1. विद्युत्वन्तं ललित-वनिताः सेन्द्रचापं सचित्रा,
   संगीताय प्रहतमुरजाः स्निग्धगम्भीर-घोषम्।
   अन्तस्तोयं मणिमयभुवस्तुङगमभ्रंलिहाग्राः
   प्रसादास्त्वां तुलयितुमलं यत्र तैस्तैर्विशेषैः।। मे.दू.(उत्तर)श्लो.-1

भवनों का वर्णन ठीक उसी प्रकार से नेमिदूत में भी किया गया है, उसमें द्वारिकापुरी कावर्णन करते हुए यह कहा गया है कि शुभ्र कौमुदी के समान विमल यश के लेप से लेपित श्वेत कान्ति वाले भवन उसी प्रकार से ऊँचे हैं जिस प्रकार से हे मेघ! तुम ऊँचे हो। नेमिदूत में तो इस वर्णन में कालिदास के द्वारा प्रयुक्त किये गये उनके शब्दों को ही दुहरा दिया गया है और भवनों की उच्चता का वर्णन किया गया है।[1]

जैनमेघदूतम् में भी एक स्थान पर उच्च भवनों का और उन भवनों के गगनचुम्बी शिखरों का वर्णन है। यह वर्णन उस समय किया गया है जब श्री नेमिप्रभु ने श्री कृष्ण के शङ्ख पाञ्जन्य को धारण किया था और उसे अपने मुख से लगाकर उसे बजाया था। उस स्थिति का वर्णन करते हुए आचार्य मेरुतुंग ने लिखा है कि स्त्रियों के मुख से हाहाकार का शब्द उस समय उसी प्रकार निकला और धारित हुआ जैसे वे अपने हाथ में हार धारण करतीं हैं। इसी तरह से जिस प्रकार फाल्गुन मास में वृक्षों के पत्ते गिरते हैं, उसी तरह से सैनिकों के हाथों से अस्त्र-शस्त्र गिरने लगे। इसी भाँति पर्वत की चोटियों की तरह महलों के शिखर ढहने लगे और शङ्ख की प्रतिध्वनि पर्वतों से आने लगी।[2] इस वर्णन में महलों के शिखरों की उच्चता का वर्णन उसी प्रकार से किया गया है जिस प्रकार से पर्वतों की चोटियाँ गगनचुम्बी होती हैं।

---

1. शश्वत्यान्द्रस्वतनु महसं प्रोल्लसद्रत्नदीपा,
   मानप्रांशु शिखरनिवहैर्व्योममार्ग स्पृशन्तः।
   गौरज्योत्स्नाविमलयशसं शुभ्रभासः सुधाभिः,
   प्रासादास्त्वां तुलयितुमलं यत्र तैस्तैर्विशेषैः।। मे.दू., पृ. 74
2. हारावाप्तीरदधत हरीवाने पौरनार्यो
   योद्धुर्गुच्छच्छदवदपतन् फाल्गुनऽस्त्राणि पाणेः।
   प्राकारग्रयाण्यपि विजगलुर्गण्डशैला इवाद्रेः
   पूच्चक्रे च प्रतिरुतनिभाद्रभूरिभीरुज्जसन्तः।।जै.मे.दू.(प्रथम सर्ग)श्लो. 37

दूतकाव्य परम्परा में एक अन्य दूतकाव्य शीलदूत भी है। इस खण्डकाव्य में भी श्रेष्ठ नगरियों में गगनचुम्बी शिखरों वाले भवनों का वर्णन किया गया है। कवि ने इस खण्डकाव्य में पाटलीपुत्र के वर्णन में वहाँ के श्रेष्ठ भवनों कावर्णन किया है और भवनों के कंगूरों की ऊँचाई का वर्णन करते हुए यह लिखा है कि वे भवन और उनके ऊँचे कंगूरे इतने ऊँचे हैं कि जहाँ पर आकाश में शीघ्र चलता हुआ सूर्य शङ्का करता है कि कहीं इन गगनचुम्बी भवनों के बीच में चलता हुआ मेरा रथ स्खलित न हो जाये। इस वर्णन से उस नगरी के उच्च्च भवनों का और गगनचुम्बी शिखरों का परिचय मिलता है।[1]

जिस तरह से इन काव्यों में भवनों का और उनकी अट्टालिकाओं का वर्णन किया गया है उसी तरह से वनों का वर्णन भी यत्र-तत्र उपलब्ध है, एक स्थान पर आम्रकूट पर्वत का सङ्केत किया गया है जो सम्भवतः आम्रवृक्षों के समूह के कारण आम्रकूट नाम से जाना जाता था। इसमें आम्र का वर्णन करते हुए यह कहा गया है कि वह आम्रवृक्षों से घिरा हुआ है और देवदम्पत्तियों के देखने योग्य है। इसी तरह से अन्य स्थान पर स्नान सरोवरों का, कूपों का और वापियों का वर्णन भी है। एक उद्यान के बीच में जल सरोवर है और उस जल सरोवर में कामिनियाँ अपने शरीर के चन्दन लेप से उस सरोवर के जल को सुगन्धित करतीं हैं वहाँ के उद्यानों को निरन्तर बहती हुयी वायु अपने वेग से उन्हें निरन्तर कपाती रहती है।[2]

---

1. गच्छंस्तूर्णं नभसि तरणिः शंकते नित्यमेवं
   सौधेष्वेषु स्खलतु मम मा स्यन्दनोऽभ्रंलिहेषु।
   मेघा यस्यामतिगुरुगृहैः प्राप्य संघट्टमाराद्
   धूमोद्गारानुकृतिनिपुणा जर्जरा निष्पतन्ति।। शील.दू.,श्लो. 77
2. भर्तुः कण्ठच्छविरितिगणैः सादरं वीक्ष्यमाणः
   पुण्यं पायास्त्रिभुवनगुरोर्धाम चण्डीश्वरस्य।
   धूतोद्यानं कुवलयरजोगन्धिभिर्गन्धवत्या-
   स्तोयक्रीडानिरतयुवतिस्नानतिक्तैर्मरुद्भिः।।मे.दू.(पूर्व)श्लो. 33

नेमिदूतम् में केलिपर्वत का वर्णन किया गया है और वहाँ पर यह कहा गया है कि वह केलिपर्वत अर्जुन वृक्ष की विशेष सुगन्धि से सुगन्धित है। उस पर केतकी के पुष्प खिले हुए हैं, पुष्पों से प्राप्त होने वाले पराग का आस्वाद कर भ्रमर गुञ्जार कर रहे हैं, मयूरों का मनोहारी नृत्य हो रहा है और मेघ की क्रीडा से पर्वत अलङ्कृत हो रहा है। इस प्रकार का वर्णन वहाँ पर प्रकृति के एक रम्य रूप का चित्रण करता है।[1]

इसी तरह से जैनमेघदूतम् में इस प्रकार का वर्णन आया है जिसमें वसन्त के आने पर वन की शोभा अनेक गुना अधिक बढ़ जाती है। जब वन के मध्य में श्रीकृष्ण और नेमिनाथ के बीच नृत्य और गीत का आयोजन हुआ तो उसमें मानो वायु अपने प्रवाह की ध्वनि से वाद्ययन्त्र बजा रही थी, भौंरे अपने गुञ्जार से मधुर गीत गा रहे थे,कोयलों का समूह ताल दे रहा था और लतायें अपने लगे हुए पत्तों से नर्तन कर रहीं थीं।[2]

मेघदूत में कालिदास ने इन्द्रनीलमणि से बने शिखरों वाले पर्वत का वर्णन किया है। वह ऐसा क्रीड़ा-पर्वत है जिसे कदली के वृक्ष चारों तरफ से घेरे हैं और उन वृक्षों के पत्ते स्वर्ण के सदृश चमक रहे हैं। उस पर्वत में मालती कुञ्ज है, अशोक और वकुल के वृक्ष हैं।[3]

---

1. सान्द्रोन्निअर्जुनसुरभितं प्रोन्मिषत्केतकीकं,
   हृद्यं जातिप्रसवरजसा स्वादमत्तात्रिनादैः।
   नृत्यत्केकामुखरशिखिनं भूषितोप्रान्तभूमि,
   नानाचेष्टैर्जलदललितैर्निर्विशेस्तं नगेन्द्रम्।। मे.दू.,श्लो.66
2. वातावाद्यध्वनिमजनयन् बल्गुभृङ्गा अमार्यं-
   स्तालान् दध्रे परभृतगणः कीचका वंशकृत्यम्।
   वल्ल्यो लोलैः किशलयकरैर्लास्यलीलां च तेनु-
   स्तद्भक्त्येति व्यरचयदिव प्रेक्षणं वन्यलक्ष्मीः।। जै.दू.(द्वितीय सर्ग)श्लोक 14
3. मे.दू.(उत्तर), 14-15

जिस प्रकार से स्नान सरोवरों, भवनों और केलिपर्वतों का वर्णन इन खण्डकाव्यों में किया गया है उसी तरह से विविध नगरों के घरों में बनी हुयी वापियों कावर्णन भी प्राप्त होता है। मेघदूत में कालिदास मेघ को जब अलकापुरी भेजते हैं तो उसे यक्ष के घर का परिचय बताते हैं। वे कहते हैं कि यक्ष मेघ को सम्बोधित करता हुआ यह बता रहा है कि मेरे घर के अन्दर एक सुन्दर वापी बनी हुयी है। उस वापी की सीढ़ियाँ मरकत मणियों से बनी हैं और उसमें ऐसा स्वच्छ जल भरा हुआ है जिस जल में वर्षा के समय मानसरोवर से आकर हंस निवास करते हैं।[1]

शीलदूत भी एक ऐसी रचना है जिसमें यत्र-तत्र भवनों का, क्रीडा पर्वतों का और वापियों का वर्णन किया गया है। इस काव्य में एक स्थान पर क्रीड़ा पर्वत कावर्णन करते हुए यह चित्रण किया गया है कि वहाँ का क्रीड़ा पर्वत इस प्रकार का था जो नन्दन वन के समान शोभित हो रहा था। जिसमें अनेक घने वृक्ष लगे हुए थे उन वृक्षों की छाया गम्भीर थी, फल सुन्दर थे और जल स्वच्छ था। ये वृक्ष इस प्रकार से दिखायी दे रहे थे जैसे उनके शाखा रूपी हाथ क्रीड़ा करने वालों का आह्वाहन करते थे। वहाँ पर सभी लोग आनन्द का अनुभव कर और उल्लास का अनुभव करते थे।[2]

---

1. वापी चास्मिन् मरकत-शिलाबद्ध-सोपान-मार्गा
   हेमैश्छन्ना विकचकमलैः स्निग्धवैदूर्य- नालैः।
   यस्यास्तोये कृत-बसतयो मानसं सन्निकृष्टं
   नाश्यासन्ति व्यपगतशुचस्त्वामपि-प्रेक्ष्य हंसाः।। मे.दू. (उत्तर)श्लोक. 15
2. क्रीड़ाशैलोवर! गुरुरयं राजते ते पुरस्ता-
   च्चक्रे केलिः किल सह मया यत्र चित्रा त्वया प्राक्।
   स्त्रिग्धच्छायैविमलसलिलैः सत्फलैर्यो जनाना-
   मुद्दामिनि प्रथयति शिलावेश्मभिर्यो वनानि।।
   लोलच्छाखाशयविलसितैस्त्वामिवाकारयन्ती।
   वृक्षालीयं कुसुमपुलकं दर्शयन्तीव पश्य
   स्त्रीणामाद्यं प्रणयि वचनं विभ्रमो हि प्रियेषु।। शी.दू. ,श्लोक 27,30

जैनमेघदूतम् में एक स्थान पर क्रीड़ावापी का वर्णन आया है। इस वर्णन क्रम में वहाँ पर कहा गया है कि अपने प्रिय पुत्र के लिए मातायें जो-जो क्रियायें करती हैं अप्सराओं ने जिन भगवान् के लिए अनेक प्रकार की क्रियायें कीं। इसी प्रकार देवताओं ने अनेक रूप धारण कर भगवान् के साथ उन्हीं के उम्र वाले होकर इस प्रकार से क्रीड़ा की जिस प्रकार की क्रीडा क्रीडावापियों में की जाती है। इस वर्णन में क्रीडावापी का वर्णन जैनमेघदूतम् में प्राप्त होता है।[1]

(ख) देवभवन- शिव-मन्दिर, विष्णुमन्दिर, सूर्यमन्दिर आदि :-

यहाँ पर सम्मिलित किये गये खण्डकाव्यों में जिन नगरियों का वर्णन किया गया है उन नगरियों में अनेक प्रकार के भवनों का वर्णन है। इन भवनों में जहाँ एक ओर भगवान् शिव, विष्णु आदि देवों के भवनों का वर्णन सङ्केत रूप में प्राप्त होता है। उत्तर मेघ के प्रारम्भ में-'प्रासादस्त्वाम्'-में जो प्रसाद शब्द लिखा गया है उसका अर्थ टीकाकारों ने देवालय ही किया है।[2] पवनदूत में एक स्थान पर कुबेर के स्थान से जाती हुयी धवल गुहों का संकेत किया गया है। जिसे गोरा अगार कहा गया है अथवा भगवान् शङ्कर का आगार। इस वर्णन वर्णन में भगवान् शङ्कर के मन्दिर का ही वर्णन है। इस श्लोक में भी टीकाकारों ने 'आगार' शब्द से भगवान् शिव के मन्दिर का ही अर्थ ग्रहण किया है।[3]

---

1. ये ये भावाः प्रियसुतकृते प्रतिक्रियन्त प्रसूभि-
   स्तांस्तांस्तस्यातनिषत हरिप्रेरिता देव्य एव।
   नानारूपाः सदृशवयसो हंसवद्वीचयस्तं
   देवाएवानिशमरमयन् केलिवापीषु भक्त्या।। जै.दू.(प्रथम सर्ग)श्लो. 20
2. मे.दू. (झ), पृ0 158
3. यातस्योर्ध्व धनपतिनगेनैव गोरैरगारैः,
   पश्येस्तस्मिन् नगरमनघं चारू चन्द्रार्द्धमौलैः।
   यत्रानेक प्रिय नख पदव्याजतो वाररामाः,
   भर्तुर्भूषाशशधरकला चिन्हमडके वहन्ति ।। प.दू.,श्लोक, 29

इसी तरह से वहाँ पर रघुकुल के पूज्य देवता सूर्य का संकेत भी है। वहीं वर गंगा के तट पर स्थित भगवान् शंकर के उस मन्दिर का भी संकेत है जो अर्द्धनारीश्वर के रूप में स्थापित हैं। इस रूप में शिव, सूर्य और गौरी के मन्दिरों का संकेत वहाँ से प्राप्त किया जा सकता है।[1] इस तरह से एक संकेत शीलदूत में भी देखने को मिलता है। वहाँ पर जिस क्रीडा पर्वत का चित्रण किया गया है उस क्रीडा पर्वत की धवलता के लिये वह पर्वत है कि उस क्रीडा पर्वत पर बने हुऐ पर्वत की धवलता ऐसी है जैसे शिव के प्रतिदिन के अट्टहास का दिन हो। इसी प्रकार जिन मन्दिरों के साथ-साथ ऐसा प्रतीत होता है जैसे बालि को नियन्त्रित करने के लिए विष्णु स्वयं अवतरित हुये हैं और उनके चरणों की श्यामल कान्ति वहाँ पर बिखरी पड़ी है। इससे यह संकेत मिलता है कि शीलदूतम् में भगवान् शिव और विष्णु के मन्दिरों का संकेत स्पष्ट रूप से किया गया हैं।[2]

(ग) मूर्तिकलायें :-

संदर्भित खण्डकाव्यों में भगवान् के अनेक रूपों का वर्णन देखने को मिलता है। इन वर्णनों में भवनों का अर्थात् देवमन्दिरों का जो चित्रण किया गया है वह दिव्य है। वहाँ पर देवमन्दिरों के निर्माण का संकेत भी है और इस निर्माण में प्रायः यह कहा गया है कि वे देवमन्दिर भव्य हैं। धवल हैं और गगनचुम्बी हैं। सामान्य रूप से भवनों का अर्थ निवास गृह लिया जा सकता है किन्तु भिन्न-भिन्न टीकाकारों ने भवनों का अर्थ देव मन्दिर किया है और यह स्वाभाविक है कि इस प्रकार के वर्णन में विराजी हुयीं देव प्रतिमायें संकेतित हैं। एक स्थान पर भवनों में रखीं काष्ट मूर्तियों का संकेत है।[3]

---

1. तत्रानर्घ्यं रघुकुलगुरुं स्वर्णदीतीरदेशे, नत्वा देवं ब्रज गिरिसुतासं विभक्तङ्गरम्यम्।
   याते यस्मिन् नयन पदवीं सुन्दर भ्रूलतानां,
   प्रौढस्त्रीणां गलपि रमण प्रेम जन्माभिमानः।। प.दू., श्लोक, 30
2. शैले लीलागृहमिह महत कारितं तेऽस्ति पित्रा तस्मिन् वासं कुरु वरे! चिरं वेऽतिर्नो तवाऽत्र।
   श्वेतज्योतिः स्फटिकमणिभिर्निर्मितं भ्राजते य-द्रीशीभूतः प्रतिदिनमिव त्र्यम्बकस्याट्टहासः।।
   दित्वा स्वाड़ि जिनपतिमहाचैत्यपूते प्रभूते स्त्रीभिःसार्द्ध विबुधनिषणा यत्र बेलन्तिनाथ।
   तिर्यग्व्यारयज्जनगिरिरिवाभ्रं गतो भ्राजते यः श्यामः पादो बलिनियमनाऽभ्युद्यतस्येव विष्णोः।।
   शी.दू. 62, 61,
3. प.दू. पृ0 73

शीलदूतम् में जब भगवान् शिव के भवन का वर्णन है तो उसमें स्फटिक मणि के प्रयोग का संकेत है। यह स्वाभाविक सा प्रतीत होता है कि उस भवन में विराजी हुयी शिव प्रतिमा सहज में ही मणियों से निर्मित होगी क्योंकि जैसे अपनी धवलिका से देवमन्दिर धवलित है उसी तरह से शिव प्रतिमा भी धवलित ही हैं।[1] मेघदूतम् में इसी तरह का संकेत उस समय किया गया है जब अलकापुरी का वर्णन करते हुए वहाँ पर शिव के देवालय के वर्णन में मणियों का संकेत हुआ। कालिदास लिखते हैं कि वहाँ की भूमि मणियों से निर्मित थी और उस भूमि में बने हुए भगवान् शिव के भव्य प्रासाद मणियों से ही बने हुए थे। इसलिए यह सहज स्वाभाविक है कि उन देवालयों की देवमूर्तियाँ मणिजटित होंवे।[2]

नेमिदूत में जब भगवान् नेमि के द्वारा सेवित किये गये पर्वत शिखर का वर्णन किया गया है तो वहाँ पर भगवान् कृष्ण के जिस प्रासाद का वर्णन है तो उस प्रासाद के वर्णन में भी मणियों के प्रयोग का संकेत भी है। उन मणियों की कान्ति नीली कही गयी है और इस रूप में ऐसा प्रतीत होता है कि वहाँ के देवमन्दिर और उनमें स्थापित देवप्रतिमायें नीलमणियों से सज्जित थीं।[3] अन्य किसी भी रूप में देवप्रतिमाओं के स्वरूप में बहुत अधिक स्पष्ट रूप से वर्णन नहीं किया गया है। कहीं-कहीं पर संकेत रूप में ही यह संकेतित किया गया है कि तब के देव मन्दिरों में जो प्रतिमायें स्थापित होती थीं, वे भव्य होती थीं और उनके लिये जो मन्दिर बने हुये होते थे, वे भव्य होते थे।

---

1. शी.दू., पृ0 26
2. मे. दू. (उत्तर) 1
3. किं शैलेऽस्मिन् भवति बसतो न व्यथा कापि चित्ते,
   संत्यज्य स्वां पुरमनुपमां द्योतते नाथ ! यस्याः!
   त्वत्सौधेनासित मणिमयाग्रेण हैमोऽग्रवप्रो,
   मध्ये श्यामः स्तन इव भुवः शेषविस्तारपाण्डुः।। ने. दू. 19

(घ) जलक्रीडा, रतिक्रीडा, संगीतक्रीडा आदि :-

इन सन्दर्भित खण्डकाव्यों में अनेक प्रकार की क्रीड़ाओं के सन्दर्भ देखने को प्राप्त होते हैं। मेघदूत में जब यक्ष मेघ के लिए रास्ता बताता है तब वह यह कहता है कि तुम्हारे मार्ग में महाकालेश्वर का स्थान प्राप्त होगा। वहाँ पर बहती हुयी नदी में स्नान करती हुयी जलक्रीडा से स्वयं को आह्लादित करती हुयी कामनियाँ तुम्हें इस प्रकार से देखेंगी मानो तुम भगवान् शिव के गले की शोभा हो।[1] इस वर्णन में स्त्रियों के द्वारा की जाती हुयी जलक्रीडा का वर्णन किया गया है।

जलक्रीडा का वर्णन नेमिदूत के रचनाकार ने भी किया है। वहाँ पर नेमिनाथ को सम्बोधित करते हुए यह कहा गया है कि आप इस नगरी में क्षिप्रा नदी के तट पर स्थिति उज्जयिनी के बगीचों के मकरन्द के बहाने मालती पुष्प की कलियों को खिलाते हुए तथा जलक्रीडा में आसपास युवतियों के स्नान से सुगन्धित क्षिप्रा नदी की वायु द्वारा शरीर से परिश्रम के कारण उत्पन्न श्वेत बिन्दुओं को दूर करने के द्वारा तुम सेवित होगे। अर्थात् अपने मार्ग में इस प्रकार से क्षिप्रा नदी को देखोगे जिसमें वहाँ की युवतियाँ निरन्तर जलक्रीडा करती रहती हैं और जिसकी शीतल वायु मार्ग के श्रम का परिहरण करती है।[2]

---

1. भर्तुः कण्ठच्छविरितिगणैः सादरं वीक्ष्यमाणः
   पुष्यं पायास्त्रिभुवन गुरोर्धाम चण्डीश्वरस्य।
   धूतोद्यानं कुवलयरजोगन्धिभिर्गन्धवत्या–
   स्तोयक्रीडा निरतयुवतिस्नानतिक्तैर्मरुद्भिः।। मे. दू. (पूर्व.), 33
2. उद्यानानामुपतट्भुवामुज्जयन्त्याः समंता–
   दातब्दभिर्विपुलबिगलन्मालती जालकानि।
   अङगामार्गश्रम जलकणान्सेव्यसेऽस्यां हरद्भि–
   स्तोयक्रीडा निरतयुवतिस्नान तिक्तैर्मरुद्भिः।। ने. दू. 37

∴ पवनदूत में विस्तार से जलक्रीडा का वर्णन प्राप्त होता है। वहाँ पर पवँन के मार्ग को प्रशस्त करते हुए यह कहा गया है कि हे पवन! तुम अपने मार्ग में भक्ति और विनम्रता पूर्वक उस स्थान को प्राप्त करना जिस पर भगवती सूर्य पुत्री यमुना प्रवाहित होती हैं। यह वही यमुना हैं जिसमें देश की स्त्रियाँ निरन्तर जलक्रीडा करती रहती हैं और जिस यमुना जल में उनके शरीर से निरन्तर लेप से निरन्तर सुगन्धि का वास रहता है और जो और अधिक श्याम होकर बहती है।[1] जैनमेघदूत में विस्तार से जलक्रीडा का वर्णन प्राप्त होता है। इसमें भगवान् श्रीकृष्ण की जलक्रीडा दिखायी गई है जिसमें नेमिनाथ का सहायोग है। जिन तालाबों में जल भरा हुआ है और जिनमें विविध प्रकार के पुष्प खिले हुए हैं ऐसे सरोवरों में श्रीकृष्ण और नेमिनाथ वहाँ स्नान करती हुयी युवतियों के बीच ऐसे जलक्रीड़ा कर रहे हैं जैसे कोई मदमत्त हाथी अपने सूड़ से जल उलींचता हुआ हथिनियों के बीच जल क्रीडा करता है।[2]

इसी तरह का वर्णन करते हुए वहाँ पर यह वर्णन किया गया है कि कृष्ण और नेमिनाथ प्रेमरस में मग्न होकर कहीं एक घड़ी, कहीं दो घड़ी, कहीं तीन घड़ी रुककर वहाँ की दीर्घकाओं में मज्जन करते हैं।

---

1. तोयक्रीडा सरसनिपततल्सुहृय सीमन्तनीनां,
   वीची धौतैः स्तनमृगमदैः श्यामलीभूय भूयः।
   भागीरथ्यास्तपनतनया यत्र निर्याति देवी,
   देवं कुर्यास्तमथ जगतीपावनं भक्तिनम्रः।। मे.दू. 33
2. तत्रान्यत्रोत्तरसरिंसरिद्वापिंतोयेषु चैष
   क्रीडां कर्तु रतिवशवशावृन्दवर्ती सुगात्रः।
   मृदनन् पदभ्यां नलिननिकरं नीरपूरं करेणो-
   दस्यन् पश्यन्नधिपदमुपाक्रंस्त हस्तीन शस्त्रः।। जै.दू. (द्वितीय सर्ग),श्लोक 40

जब वे दोनों अर्थात् श्रीकृष्ण और नेमिनाथ जलक्रीडा कर रहे हैं तो वे कटि पर्यन्त, खिले पुष्पों वाली रतनजडित स्वर्ण वाली नाली उस सुन्दरी के साथ खेलते हुए उन दोनों ने उसी तरह चक्कर लगाया जिस तरह से चन्द्रमा तारा समूह के साथ मेरुपर्वत का चक्र लगता है।[1]

जलक्रीडा की ही तरह इन काव्यों में रति क्रीडा का सन्दर्भ भी किया गया है। इस सन्दर्भ में एक स्थान पर मेघ को मार्ग बताते हुए यह कहा गया है कि अलका जाने पर यद्यपि तुम्हारा मार्ग टेढ़ा है तथापि उज्जयिनी के ऊँचे महलों का परित्याग करके तुम मत जाना। तुम्हारी विद्युत की चमक विभ्रमित चञ्चल कटाक्षों वाली नगरवासी स्त्रियों के नेत्रों से यदि तुमने बिहार नहीं किया तो निश्चित ही ऐसा होगा जिससे तुम अपने जीवन से वञ्चित हो जाओगे।[2] इसी तरह का एक अन्य वर्णन और है जिसमें यह कहा गया है कि क्षिप्रा नदी का वायु उस मधुर बातें करने वाले प्रेमी के सदृश हैं जो अपनी मधुर-मधुर बातों से कामिनियों के रतिश्रम को दूर करता है। इसलिए तुम जब यात्रा करना तो उस क्षिप्रा नदी के पास से अवश्य जाना। जिस नदी में प्रातःकाल सारस पक्षी निरन्तर कलरव करते हैं और जिस क्षिप्रा नदी का वायु कमलों के पराग से सुगन्धित होकर निरन्तर अङ्गों को सुख देता रहता है।

---

1. तस्यां श्रोणिद्वयसपयसि स्मेरपडकेरूहायां रत्नश्रेणीखचितनिचितस्वर्णसोपानकायाम्।
   हर्षात् खेलन सह सहचरीरत्नवारेण तारा–
   चक्रणेवाभ्रमदुडुपतिर्मेरुमन्वेष नेमिम्।। जै.दू. , 42
2. वक्रः पन्था यदपि भवतः प्रस्थिततस्यात्तराशां सौधोत्सङ्ग–प्रणय–विमुखो मास्य–भूद्उज्जयिन्याः।
   विद्युद्दाम–स्फुरित–चकितैस्तत्र पौराङ्गनानां
   लोलापाङ्गैर्यदि न रमते लोचनैवञ्चितोऽसि।। मे.दू.(पूर्व), 27
3. दीर्घीकुर्वन् पटु मदकलं कूजितं सारसानां, प्रत्यूषेषु स्फुटितकमलामोदमैत्रीकषायः।
   यत्र स्त्रीणां हरति सुरतग्लानिङ्गानुकूलः, शिप्रावातः प्रियतम इव प्रार्थना चाटुकारः।।
   मे.दू.(पूर्व.) , 31

उत्तरमेघ में और भी इसी प्रकार के वर्णन हैं जिनमें रति क्रीडा का वर्णन विशिष्टता के साथ किया गया है। इस क्रीडा की रम्यता को कालिदास ने अपने वर्णन वैशिष्ट्य से ऐसा सुन्दर स्वरूप प्रदान किया है जो मोहक है, आनन्ददायक है और अधिक मात्रा में आकर्षक है।[१] पवन दूत में इसी प्रकार का वर्णन किया गया है। वहाँ पर लक्ष्मणसेन के शासन का वर्णन करते हुए यह कहा गया है कि वह शासन गङ्गा नदी के कारण स्वाभाविक रूप से पवित्र था। राजा लक्ष्मण सेन के नगरवासी दोनों लोकों के मृत्युभय से छूट गये थे। यदि वहाँ भय था तो प्रेम मिश्रित कलह से युक्त कोपाङ्कुर वाली भ्रू-भङ्गिमा से लावण्य युक्त सुन्दरियों का ही था। वहाँ पर कान से लिया काजल कजरारे नेत्रों वाला लिपिबद्ध वियोगजन्य ऊष्मा से युक्त कमलिनी सूत्र से बाँधा गया था। अधर की लालिमा से उत्कृष्ठ सिन्दूर से अङ्कित युवतियों के तालपत्र प्रेमी युगलों के प्रेमपत्र का उदाहरण बनते थे।[२]

इसी क्रम में कवि और अधिक सुन्दर ढ़ंग से रतिक्रीडा का वर्णन करता है और उनके अभिसार का अङ्कन करता है। वह नगर ऐसा है जहाँ मृगनयनी अपने सौन्दर्य से अप्सराओं को जीत रहीं है और जो कामदेव के लिए भी आश्चर्य कर है। जहाँ पर सन्ध्या के समय उच्च भवनों के अन्दर से जलाये गये पदार्थों का धुआँ गवाक्षों से निकलता है और एक विशेष प्रकार के मादक-भाव को उत्पन्न करता है। वहाँ काम कला से परिचित रसिक स्वच्छन्द कामक्रीडा के अवसर से रमणियों के कान से गिरे हुए केतकी के पत्ते की तरह मुखचन्द्र को एक टुकड़े के रूप में देखते हैं। अर्थात् जहाँ पर विपरीत रविकाल में सुन्दिरियों के

---

1. नीवोबन्धोच्छ्वसितशिथिलं यत्र बिम्बाधराणां,क्षौमं रागाद निभृतकरेष्वाक्षिपत्सु प्रियेषु। अर्चिस्तुङ्गानभिमुखमपि प्राप्य रत्नप्रदीपान्, ह्रीमूढानांभवति विफलप्रेरणा चूर्ण-मुष्टिः मे.दू. (उत्तर), 7 ।
2. आत्तं कर्णात्प्रणिहितपदं साञ्जनैरश्रुलेशै-र्बद्धं तापग्लपितविसिनी तन्तुनां बन्धनेन। यत्र स्त्रीणामधररुचकन्यस्तसिन्दूरमुण्डं, तालीपत्रं प्रणयिनि जने प्रेमलेखत्वमेति।। मे.दू., 40

कान से गिरे हुऐ केतकी के मध्य वाले पत्ते को अत्यन्त धवल होने के कारण रसिक कुण्डलों के आघात से व्यथित हुए मूलचन्द्र का एक अंश मानते हैं।[1]

इसी प्रकार का और विस्तृत वर्णन इस काव्य में किया गया है जिसमें रतिक्रीडा में भी कलह क्रीडा का निरूपण है। एक स्थान पर यह वर्णन है कि किसी समय प्रेमी और प्रेमिका केलिगृह में बैठे हुए अर्द्धरात्रि हो चुकी है, प्रणय वचन असफल हो चुके हैं, फलतः प्रणय कलह हो रहा है जिसमें प्रणय अस्त्र का काम कर रहे हैं माला गिर गयी है चाँदनी लेकर चन्द्रमा आ गया है मानो उसने मध्यस्थ होकर दोनों को शान्त कर दिया है। चन्द्रकिरणों का यह प्रभाव है कि वह कलह की तीव्रता को शान्त कर देता है और इस प्रकार से रतिक्रीडा परिपूर्णता को प्राप्त होती है।[2]

इस तरह के इन वर्णनों में कवियों ने जहाँ रतिक्रीडा का वर्णन विधिपूर्वक किया है वहीं पर विषय के अनुरूप कवियों का भाषण ललित और आकर्षक है। रतिक्रिया की जो रमणीयता होती है इन खण्डकाव्यकारों ने उसका निर्वहन भली प्रकार से किया है और इस प्रकार से अपनी विषय वस्तु का निरूपण किया है जिससे रससृष्टि में किसी प्रकार का व्यवधान न हो। इन वर्णनों में भाषा की कोमलता और भावों की शैली आकर्षित करने वाली है।

---

1. तत्रस्वेच्छारतिविनिमये चैव सीमन्तिनीनाम्,कर्णस्त्रंसि प्रकृति सुभगं केतकी गर्भपत्रम्।
उत्पश्यन्ति व्यतिकरचलत्कुण्डलाघट्टनाभि– भिन्नं साक्षादिव मुखविधोः खण्डमेकं विदग्धाः।।
प. दू. , 51
2. व्यर्थीभूतप्रियसहचरीचारूवाचां निशीथे, रोषदस्त्रीकृत कुवलयोत्तं सविस्त्रं सिमाल्यम्।
सूनां यत्र प्रणयकलहं केलि हर्म्यग्रिभाजाम्, इन्दु प्रत्यादिशति सविधीभूय शश्वत् करेण।।
प. दू. , 50

जिस तरह से इन विविध क्रीडाओं का वर्णन किया गया है उसी प्रकार से इन खण्डकाव्यों में सङ्गीत क्रीडा का वर्णन होता है। मेघदूतम् में यक्ष मेघ को सम्बोधित करता हुआ यह कहता है कि जब तुम अलका नगरी के उद्यानों में वहाँ के युवक गणिकाओं के साथ बिहार करते हुए मिलेंगे। इसी प्रकार से अनेक उद्यानों में विशेषकर वैभ्राज नामक उद्यान में किन्नर समूह कुबेर के यश का गान करता हुआ दिखायी देगा। इस प्रकार तुम्हें गानक्रीडा के दर्शन होंगे।[1] इसी तरह का संगीत का संकेत कालिदास ने वहाँ पर किया है जहाँ वे अलका की विशेषताओं का वर्णन करते हुए और कहते हैं कि वहाँ के भवन ऐसे हैं जिनमें अलका की युवतियाँ अपने रास-रंग में डूबकर निरन्तर संगीत में मदमत्त रहतीं हैं। वहाँ भवनों के अन्दर बजने वाला संगीत ठीक उसी प्रकार है। शनैः-शनैः तुम्हारा गर्जना होता है।[2]

जैनमेघदूतम् में भी संगीत-नृत्य का और संगीत-उल्लास का संकेत किया गया है। भगवान् नेमिनाथ जब श्रीकृष्ण की पत्नियों के साथ घिरकर नृत्य कर रहे हैं, और जलक्रीडा में निमग्न हैं तब कवि इस प्रकार का वर्णन करता है जिसमें वह लिखता है कि जिस समय भगवान् नेमिनाथ रमणियों द्वारा उछाले गये जल से नृत्य कर रहे थे तब ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे वही जल की ध्वनि मृदंग की ध्वनि होवे ।

---

1. अक्षय्यान्तर्भवन-निधयः प्रत्यहं रक्त-कण्ठै-रुद्गायद्भिर्धनपतियशः किन्नरैर्यत्र सार्धम्।
वैभ्राजाख्यं विबुधवनितावारमुख्यासहाया,बद्धालापा बहिरूपवनं कामिनो निर्विशन्ति।।
मे.दू.(उत्तर), 1
2. विद्युत्वन्तं ललितवनिताः सेन्द्रचापं सचित्राः,सङ्गीताय प्रहतमुरजाः स्निग्धगम्भीर घोषम्।
अन्तस्तोयं मणिमयभुवस्तुङ्गमभ्रंलिहाग्राः,प्रासादास्त्वां तुलयितुमलं यत्र तैस्तैर्विशेषैः।।
मे. दू. (उत्तर), 1

जल में उत्पन्न होने वाली लहरियों से कमलनियाँ इस प्रकार नृत्य कर रहीं थीं जैसे नर्तकियाँ नृत्य कर रहीं हों। उस समय उत्पन्न होने वाला भौंरा का गुञ्जार ऐसा था जो मानो उस नृत्य का संगीत था।[1] नेमि जैनदूत में संगीत नृत्य का संकेत किया गया है और वहाँ पर यह कहा गया है कि उज्जयिनी में स्थित भगवान् शंकर तुम्हारी उपासना के योग्य हैं। उन अनुपम देव को देखकर तथा मेघ के हल्के गम्भीर गर्जन के समान पूजाकाल में उरज आदि वाद्यध्वनियों का श्रवण करते हुए तुम्हारे नेत्र और श्रवण सम्पूर्णता का फल प्राप्त करेंगे।[2]

इसी तरह से एक दूसरे स्थान पर यह वर्णन किया गया है कि तुम्हारे मार्ग में जो गन्धमादन पर्वत पड़ेगा वह कदम्ब पुष्पों की सुगन्धि से सुगन्धित होगा। उन्मत्त भ्रमरों का गुञ्जार होगा, वेणुवादन की विशेष ध्वनि सी मयूरों की ध्वनि होगी और उस स्थिति में सुन्दर नृत्य करने वाले उस पर्वत पर तुम्हारा नमन होगा। और वह गमन कर्ण प्रिय गुञ्जन से उच्चारित होगा तो निश्चय ही भगवान् शिव का संगीत सम्पूर्ण हो जायेगा।[3]

---

1. तासां लीलोल्ललनजनिता गुन्दलन्ति स्म तोय–
ध्वाना वीचिप्रचलनलिनीनायिकाः साध्वनृत्यन्।
श्रोतापेयं मधुकरकुलैर्गीयते स्मातिरक्तं,
तस्येत्यासीदिव नवरसा शुद्धसङ्गीतरीतिः।। जै.दू. (द्वितीय सर्ग), 44
2. तत्रोपास्यः पथितमहिमा नाथ! देवस्त्वयाद्यः,
प्रासादस्थः क्षणमनुपमं यं निरीक्ष्य त्वमक्ष्णोः।
श्रृण्वन्पूजा मुरजनिनदान्वारिवाहस्य तुल्या,
नामन्द्राणां फलमविकलं लटस्यसे गर्जितानाम्।। ने.दू. 38
3. नीपामोदोन्मदमधुकरी गुञ्जनं गीतरम्यं,
क्रेका–वेणुक्वणितमधुराबर्हिणां चारुनृत्यम्।
श्रोत्रानन्दी मुरजनिनदस्त्वत्प्रयाणे यदिस्या–
त्संगीतार्थो ननु पशुपतेस्तत्र भावी समग्रः।। ने.दू. , 60

द्वारिका नगर के वर्णन में यह वर्णन किया गया है कि जिस द्वारिका में वसन्त काल में मद्यपान करते हुए कामोत्सव से युक्त बलराम प्रमुख यादव तुम्हारी निर्मल कीर्ति का गान करती हुयी वीरांगनाओं के साथ श्रवण के अनुकूल विशेष वाद्य विशेषों के उच्च स्वर से गाती हुयी कोकिलों के साथ रम्य बाह्योद्यान का भोग करतीं हैं-ऐसा वह द्वारिका है।[1]

इन खण्डकाव्यों में हास्य क्रीडा वर्णन भी यत्र-तत्र प्राप्त होता है। जैनमेघदूतम् में जब श्रीकृष्ण की रमणियाँ श्री नेमिनाथ को जलक्रीडा करा रहीं हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि वे हास्य के सरोवर से उन्हें आह्लादित कर रहीं हैं। एक स्थान पर हास्य बिखेरती हुयीं वे रमणियाँ अपनी-अपनी स्वर्णिम पिचकारियों के सुरक्षित जल से रंगमिश्रित करके भगवान् नेमिनाथ को सरोवार कर रहीं हैं। कवि उन रमणियों द्वारा चलायी गयी पिचकारी की धार को इस प्रकार से उपमित कर रहीं हैं, जैसे काम के बाणों की वृष्टि हो रही है।[2]

इसी क्रम में एक वर्णन इस प्रकार का भी है जिसमें श्रीकृष्ण की एक पत्नी हास्य करती हुयी अपने तीक्ष्ण कटाक्षरूपी बाणों को चलाती हुयी जड से उखाड़े गये सूंघने योग्य काम के पास की तरह श्वेत कमलों को श्री नेमिनाथ के गले में पहना देती है और ऐसा करते हुए वह व्यंगपूर्वक मुस्कराकर उन कमलपुष्पों से कहतीं है।

---

1. गायन्तीभिस्तदमलयशो वारसीमन्तिनीभिः,
   साकं वाद्यन्मधुरमरुणं तारनादान्यपुष्टम्।
   यस्यां रम्यं सुरभिसमये सोत्सवाः सीरिमुख्या,
   बद्धापानं बहिरुपवनं कामिनो निर्विशन्ति।। ने.दू. 76
2. पूरं-पूरं सुरभिसलिलैः स्वर्णश्रृङ्गाणि रङ्गात्,
   सारङ्गाक्ष्यः स्मितकृतमसुं सर्वतोऽप्यभ्यषिञ्चन्।
   धारा धाराधर ! सरलगास्ताश्च वारामफराः,
   स्मारादोङ्गप्रसृमर शरासारमारा विरेजुः।। जै.दू. , 45

तुम हमारे देवर के नेत्रों की बराबरी कर रहे हो।[1] इस रूप में उसका यह कथन उसके व्यङ्ग्य और हास्य को व्यक्त करता है जो नेमिनाथ और उन स्त्रियों के क्रीडा रस को और अधिक अभिवर्धित कर देता है। इस प्रकार के रास रंग को तब परिपूर्णता प्राप्त होती है जब कोई एक अन्य रमणी एक कमल पुष्प को तोड़कर हास्य करती हुयी नेमिनाथ को पहना देती है और यह कहती है कि हे देव! यह कमल परास्त होकर अन्य मुखकमल की सेवा करे। इस सन्दर्भ में एक टीकाकार यह स्पष्ट करते हैं कि नेमिनाथ का मुख कमल नित्य खुला रहता है जबकि यह कमल दिन में खुलता है। इसी तरह नेमिनाथ के मुखमें सुगन्धि है जबकि यह अल्पमात्रा में सुगन्धि वाला है। श्री नेमिनाथ के मुखकमल में कान्ति है जबकि इस कमल में वैसी कान्ति नहीं है। यह कमल उखाड़े जाने के कारण स्थान भ्रष्ट है जबकि मुखकमल निरन्तर अपने स्थान पर विराजित रहता है।[2] भगवान् नेमिनाथ के साथ विहार करती हुयी रमणियाँजब इस प्रकार का कथन करतीं है, तो उनकी क्रीडा में न केवल हास्य का परिस्फुरण होता है अपितु आनन्द की रसधारा बहती है। इससे यह हास्यक्रीडा और अधिक मधुर हो जाती है।

---

1. स्पर्धध्वे रे! नयननलिने निर्मले देवस्य
   स्मित्वेत्येयं शिततरतिरः काक्षकाण्डान् किरन्ती।
   कन्दोत्खातान् धवलकमलान् कामपाशप्रकाशान्
   नाशाशास्यानुरसि सरसाऽहारयत् स्वाभिनोऽन्या।। जै. दू. 47
2. नित्योन्निद्रं पुरुपरिमलं राजते जोविराजि
   स्पष्टश्रीकं वदनकमलं देव! तेसेवतेऽदः।
   स्थानभ्रष्टं जितमिति वदन्त्येव कर्णावतंसी–
   चक्रे काचिद्दशशतदलं लीलयोल्लूय तस्य।। जै. दू. , 46

एक संदर्भ शीलदूतम् में भी प्राप्त है। वहाँ पर यह कहा गया है कि हे नाथ! जब आप प्रसन्नचित होकर स्वर्णिम पिचकारी में निहित जलक्षेपण आदि के द्वारा विनोद करते हुए क्रीडा करेंगे तब आपके अश्रुओं के खुरों से गंगा का तट शिव के श्वेत बैल से विदारित पंख के समान शोभा को प्राप्त करेगा।[१] इस वर्णन में जल क्षेपण के द्वारा विनोद का वर्णन हुआ है।

मेघदूतम् में जिस प्रकार से हिमालय की धवल चोटियों को भगवान् शिव के द्वारा हास्य राशि का एकत्रीकरण बतलाया गया है उसी तरह से नेमिदूतम् में द्वारिका नगरी में बने हुए स्फटिक मणियों से बने हुए भवनों की तुलना भगवान् शंकर के प्रतिदिन के अट्टहास की राशि से की है। शिव के अट्टहास का यह मनोहर और आकर्षक स्वरूप है।[२]

---

1. क्रीडां तत्र त्वयिं रचयति प्रीतिचित्ते नितान्तं
   स्वर्णोच्छृं गीतिहित सलिलक्षेपणाद्यैर्विनोदैः।
   रोधः क्षुण्णं तब ह्यखुरैर्लप्स्यते नाथ! तस्याः
   शोभां शुभ्रत्रिनयनवृषोत्खातपं कोपमेयाम्।। शी. दू. , 56
2. तांस्तान्ग्रामांस्तमपि च गिरिं दक्षिणेन व्यतीत्य,
   द्रष्टास्यग्रे सितमणिमयं सौधसंधं स्वपुर्याः।
   क्रान्त्वा वप्रं वियति विशदैः शोभते योऽशुजालैः,
   राशीभूतः प्रतिदिशमिव त्र्यम्बकस्याट्टहासः।। ने. दू. 62

   तुलनीय

   गत्वा चोर्ध्व दशमुखभुजोच्छ्वासित-प्रस्थन्सन्धेः
   कैलासस्य त्रिदश-वनिता दर्पणस्यातिथिःस्याः।
   श्रृंङ्गाच्छ्रयैः कुमुदविशदैर्यो वितत्य स्थितः खं
   राशीभूतः प्रतदिनमिव त्रयम्बकस्याट्टहासः।। मे. दू. (पूर्व.), 58

सन्दर्भित खण्डकाव्यों में नृत्य क्रीडा का वर्णन भी यत्र-तत्र किया गया है जैसे कि नेमिदूतम् खण्डकाव्य में यह वर्णन आया है कि जब द्वारिका नगरी में भगवान् नेमिनाथ प्रवेश करेंगे तब वहाँ भी गम्भीर ध्वनि करने वाले मृदंग धीरे-धीरे ध्वनि से वातावरण को ध्वनित करेंगे। इसी तरह श्री नेमिनाथ के प्रवेश पर वहाँ के तरुण जन और नृत्यांगनायें अनेक प्रकार के गीतों का गायन करते हुए मनोहर नृत्य करेंगे और इस तरह वहाँ पर नृत्य क्रीडा का एक विशेष प्रकार का आयोजन आयोजित हो जायेगा।[1] इसी तरह का एक संकेत शीलदूतम् में भी किया गया है। वहाँ पर यह वर्णन है कि राजा स्थूलभद्र का स्थान ऐसा है कि जहाँ पर सुपात्र को दान देने में पुण्यवान रसिक बहुत पटु हैं। कामवासना में मग्न मुदित कामीजन वहाँ पर अपने यानों में चढ़कर वारांगनाओं के साथ नृत्य करते हुए विहार करते हैं।[2] इस तरह से इन स्थानों पर जिस प्रकार के नृत्य का संकेत किया गया है वह अनेक प्रकार के कामी जनों द्वारा किया जाता है और कामनियाँ भी उस नृत्य में सम्मिलित होकर आनन्द का अनुभव करती हैं। इससे इन खण्डकाव्यों में नृत्य क्रीडा कावर्णन भी अनेक रूपों में प्राप्त होता है।

---

1. यस्यां रम्यं युवजनमनोहारि वारांगनानां,
   लास्यं तालानुगत करणं भास्यति त्वत्प्रवेशे।
   वाञ्छन्तीनां तदवगमनानन्द भाजां प्रसादं,
   त्वद् गम्भीर ध्वनिषु शनकैः पुष्करेष्वाहतेषु।। ने. दू. , 72
2. यस्सामन्तः सुकृतरसिकाः पात्रदानप्रवीणा
   एनोहीना विततविलसत्कीर्तयः सन्ति सन्तः।
   वारस्त्रीभिः सह मुमुदिताः काममग्नाश्च कामं
   बद्ध्वा मानं बहिरुपवनं कामिनो निर्विशन्ति।। शी.दू., 76

एक स्थान पर दोलानृत्य का संकेत भी किया गया है। वहाँ पर यह लिखा गया है कि पवन दूत में नगर विशेषका वर्णन करते हुए यह कहा गया है कि उरगपुर के युवकों के लिए वहाँ विलास के लिए सभी साधन सामग्रियाँ उपलब्ध हैं। वहाँ जो सुगन्धित केसर शरीर में लेपन के लिए बनाया जाता था उसे युवतियाँ समय विशेष पर अपने शरीर पर लेपित करतीं थीं। चन्दन और कपूर से बने इस लेप का उपयोग करतीं थीं। जो पीत वर्ण का होता था तथा शीतल और सौन्दर्यवर्द्धक होता था। वहाँ पर निरन्तर झूले पड़े रहते थे जिस पर बैठकर युवतियाँ झूला झूलती थीं और इसी दोलानृत्य से वे आनन्द का अनुभव करती थीं। कुछ ऐसी वापीं थीं जिनमें कटिपर्यन्त जल रहता था और उनमें युवक तथा युवतियाँ मिलकर जलक्रीडा किया करते थे। इस संकेत से वहाँ पर दोलाक्रीडा का संकेत है जो झूला झूलकर खेलने का पर्याय है।[1]

इन क्रीडाओं के साथही साथ इन खण्डकाव्यों में जिन नगरों का वर्णन किया गया है उन नगरों की सम्पन्नता का कथन अनेकशः कहा गया है। मेघदूतम् में जब अलकानगरी का वर्णन किया गया है तब वहाँ पर यह कथन है कि उस अलका में जो युवतियाँ निवास करती हैं, वे अपने सौन्दर्य में इतनी अप्रितम थीं कि देवतागण भी उनकी कामना करते हैं। वे आकाशगंगा के जल से शीतल इस प्रकार की वायु का सेवन करतीं हैं जो शीतल है और मन्द-मन्द प्रवाहित हो रही है। उस अलका की युवतियाँ आकाशगंगा के तट पर मन्दार वृक्षों की शीतल छाया का अनुभव करती हुयी सूर्य की उपासना से दूर रहकर गंगा की बालुका में मणियों को छिपातीं हैं। और फिर स्वयं ही अपने द्वारा छिपायी गयीं उन मणियों को छिपाती तथा खोजने का खेल खेलती हैं।

---

1. वृद्धोष्माणः स्तनपरिसराः कुङकुमस्याङ्गरागा,
   क्षेत्रः केलिव्यसनरसिकाः सुन्दरीणां समूहाः।
   क्रीडावाप्यः प्रतनुसलिला मालतीदास रात्रिः,
   स्त्यानज्योत्स्ना मुदमविरतं कुवते यत्र यूनाम्।। प. दू. , 42

इस रूप में देवताओं द्वारा अभिकांक्षित वे युवतियाँ मणियों के छिपाने और खेलने के खेल में अनवरत लगी रहतीं हैं।[1]

इसी प्रकार का एक वर्णन शीलदूतम् में भी प्राप्त होता है। वहाँ पर जिस नगर का वर्णन किया गया है उसके विशय में यह विवरण है कि वहाँ पर दुग्ध के सदृश गौरवर्ण की युवतियाँ अपने फर्शों पर निरन्तर मणियों से खेलती रहतीं हैं। उनके सौन्दर्य को देखकर आकाश में अवस्थित देवाङ्गनायें भी अपने रूपों का गर्व त्याग देती हैं।[2]

इस रूप में हम इन खण्डकाव्यों में जो देखते हैं तदनुरूप यह कह सकते हैं कि इनमें विविध प्रकार की क्रीडाओं का वर्णन सम्पूर्णता के साथ प्राप्त होता है और ऐसा करने में से सभी कवि अपनी सम्पूर्ण प्रतिभा का उपयोग करते हैं। इससे इन काव्यों का रम्यता और चारुता बढ़ जाती है, जो दान की महत्ता को भी स्थापित करतीं हैं।

---

1. मन्दाकिन्याः सलिल–शिशिरैः सेन्यमानामरुद्भि–
   र्मन्दराणामनुतटरुहां छायया वारि–तोष्णाः।
   अन्वेष्टव्यैः मणिभिश्मर–प्रार्थिता यत्र कन्याः।। मे. दू. (उत्तर), 67

   तुलनीय

   कौन्दोत्तंसास्तुहिनसमये कुंकुमालिप्तदेहाः
   सान्द्रच्छाये शुचिनि तरुभि गौमती रम्यतीरे।
   रूपोल्लास्तद्विजितरतयः कन्दुकाभैःसलीलं,
   संक्रीडन्ते मणिभिरमर प्रार्थिता यत्र कन्याः ।। ने. दू., 78
2. यान्त्यो व्योम्नि त्रिदशललना कीक्ष्य यासां स्वरूपं
   सर्व गर्व मनसि रचितं चारुता यास्त्यजन्ति।
   मुग्धा दुग्धोपचित नृपुषः कुट्टिट मेष्वस्तखेदं
   संक्रीडन्ते मणिभिरम प्रार्थता यत्र कन्याः।।शी० दू०, 78

(५) संस्कार-स्वरूप आदि :-

यद्यपि सन्दर्भित खण्डकाव्यों में संस्कार आदि का स्वरूप बहुत स्पष्ट रूप से नहीं दिया गया है फिर भी कहीं-कहीं पर संस्कारों का संकेत प्राप्त होता है। सबसे बड़ा संस्कार जो जीवन का है वह पाणिग्रहण संस्कार है। इसलिए इस संस्कार का उल्लेख कई स्थानों पर किया गया है। उदाहरण के लिए नेमिदूतम् में गृहस्थी की चर्चा की गयी है, जिसमें यह वर्णन है कि गृहस्थ धर्म वाला व्यक्ति पति-पत्नी के सम्बन्धों में दृढ़ता वाला होवे। इसलिए इसमें एक स्थान पर एक माता अपनी पुत्री को सम्बोधित करते हुए हुए कहती है कि अब तुम दुःख का परित्याग करो और प्रसन्नता का अनुभव करो। सभी देवता तुम्हारे ऊपर इस प्रकार कृपा करें जिससे तुम्हारा पति से मिलन ऐसा हो जिसमें कभी भी विच्छेद की सम्भवना न हो।[1] इस रूप में यहाँ पर पति-पत्नी के इस सम्बन्ध का कथन किया गया है जो गृहस्थ धर्म का मूलाधार होता है और जिससे हम धर्म मूल प्राप्त कर सकते हैं। और इससे पाणिग्रहण संस्कार की महत्ता को स्वीकार किया गया है।

मेघदूतम् में पाणिग्रहण संस्कार के फलस्वरूप जो परिवार स्थापित होता है। उसमें पत्नी को गृहणी और पति को भर्ता के रूप में कहा जाता है। इससे इस प्रकार का संकेत लेना स्वाभाविक हो सकता है जिसमें गेहिनी का अर्थ हम उस रूप में कर सकते जो सम्पूर्ण घर की स्वामिनी है और जिसकी इच्छा से घर सञ्चालित होता है। इसी तरह पति के लिए भर्ता शब्द का प्रयोग यह अभिप्राय व्यक्त करता है जिसमें उसे परिवार का पालक माना जाता है।[2]

---

1. वत्से! शोकं त्यज भज पुनः स्वच्छता मिष्ट देवाः,
   कुर्वन्त्येवं प्रयुत्तमं नसोऽनुग्रहं ते तथामी।
   भर्तुर्भूयो न भवति रहः संगतायास्तथा ते,
   सद्यः कण्ठच्युतभुजलताग्रन्थि गाढ़ोपगूढम्।। ने.दू., 104
2. मे. दू. (उत्तर), श्लोक 17, 25

मेघदूतम् में पत्नी के लिए और भी सम्बोधन दिये गये हैं जैसे कि वहाँ पर पत्नी के लिए सीमन्तिनी शब्द का प्रयोग किया गया है। वह पत्नी का ही पर्याय है क्योंकि जहाँ इसका प्रयोग किया गया है वहाँ पर इसके पर्याय में टीकाकारों ने प्रियतमा अथवा वधू शब्द का प्रयोग किया है।[1] जैनमेघदूतम् में इसके अनेक उदहारण हैं। इसमें प्रारम्भ में यह वर्णन आया है कि राजीमति ने चेतना आने के पश्चात् अपने पति को देखा और यह अनुभव किया कि उसके पति के मन में राजीमति के प्रति तीव्र उत्कण्ठा का भाव है। इसमें पति-पत्नी के आन्तरिक भावों का संकेत है जो गृहस्थ धर्म का मूल है।[2] इसी तरह का एक सन्दंभ हम इस रूप में देखते हैं जिसमें यह कहा गया है कि अन्य मार्ग श्रेयस्कर मार्ग है और यह मार्ग ऐसा नहीं है जिसे किसी सामान्य व्यक्ति ने स्थापित किया है। जाम्बती रानी ने अपने देवर को सम्बोधित करते हुए यही कहा था कि यह मार्ग भगवान् आदि देव के द्वारा उसी प्रकार से प्रवर्तित है जैसे उनके द्वारा मोक्ष मार्ग प्रवर्तित है।[3]

पाणिग्रहण संस्कार का महत्त्व इतना अधिक प्रतिपादित किया गया है कि उसे मोक्षमार्ग के सदृश ही बतलाया गया है। एक स्थान पर यह कहा गया है कि जो कोई ब्रह्मचर्य व्रत का धारण करता है।

---

1. मे0दू0 (उत्तर) , 42
2. सद्ध्रीचीभिः स्खलितक्वचनन्यासमाशूपनीतैः
   स्फीतैस्तैस्तै मलयजजलार्द्रादि शीतोपचारैः।
   प्रत्यावृत्ते कथमपि ततश्चेतने दलकान्ता-
   कुण्ठोत्कृण्ठे नवजलमुचं सानिद्ध्यौच दध्यौ।। जै0 दू0 (प्रथम सर्ग), 3
3. नाभेयोपक्रममिह यथा श्रेयसोऽध्वा तथैवो-
   द्वाहस्यापि स्मरसि तदुपज्ञं न किं देवरेति।
   तत्तां दैवीं सृतिमपभजन कोऽपि नूतनोऽसि सार्वो
   हारी भूतद्विजमणिघृणिजीम्बवत्यत्यगासीत्।। जै0 दू0 (तृ.सर्ग), 9

वह ब्रह्म पद ही प्राप्त करता है, इसी तरह से जो गृहस्थ होता है वह पाणिग्रहण संस्कार के द्वारा अपना जीवन सद्‌गृहस्थ के रूप में व्यतीत करता हुआ ब्रह्म पद की प्राप्ति करता है इसलिए ब्रह्मचर्य व्रत और गृहस्थ व्रत दोनों एक दूसरे के पूरक ही हैं और इनमें किसी भी प्रकार का अन्तर्विरोध नहीं देखना चाहिए।[1] पवनदूत में एक संकेत पति-पत्नी के रूप में आया है जिसमें यह वर्णन किया गया है कि पति-पत्नी का सम्बन्ध ऐसा है जो निरन्तर प्रेम से परिपूर्ण रहता है किन्तु कभी कभी इनके बीच में प्रेम का विग्रह देखा जाता है। यद्यपि यह विग्रह भी कष्टकारी होता है। एक दूसरे संकेत में शिव और पार्वती के विवाह का संकेत है जिसमें शिव और शिवा के स्नेह बन्धन को स्वीकार किया गया है।[2] शीलदूतम् भी विवाह संस्कार के संकेत से संकेतित है। इस खण्डकाव्य में एक स्थान पर अपने कुटुम्बीजनों के परित्याग का निषेध किया गया है। एक स्थान पर यह कहा गया है कि किसी को भी अपने कुटुम्बी जनों का परित्याग करके गृह त्याग नहीं करना चाहिए। जो गृहस्थ आश्रम में रहते हुए अपने दान आदि धर्म के द्वारा अपना कर्तव्य करते हैं वे भी सुपात्रता को प्राप्त होते हैं। जो यह समझते हैं कि गृहस्थ धर्म से पतन ही प्राप्त होता है वे उचित नहीं कहते । इस सन्दर्भ में वहाँ पर यह कथन है कि केवल व्रत करने से ही मुक्ति नहीं मिलती। इसके समर्थन में वहाँ पर किसी कण्डरीक का उदाहरण दिया गया है और यह कहा गया है कि चिरकाल तक व्रत का पालन करने पर भी कण्डरीक पतन के गर्त में गिरा था।

---

1. गान्धारी चावगिति न परं ब्रह्मतो ब्रह्म जन्मा–
   द्धृत्वैतास्से ध्रुवमुपयतावत्यवाप्तासि तच्च।
   अस्तुङ्कारात् सुखय ननु नः पादयोः पत्यते ते
   दास्यः स्मस्ते पटुचतुगिरा राज्यमप्याप्यमीश। जै0दू0 (तृतीय सर्ग), 15
2. प. दू. , पृ0 98, 141

इसके विपरीत गृहस्थ आश्रम का पालन करता हुआ भरत जैसे चक्रवर्ती ने दोष रहित और श्रद्धावन होकर समत्व पद प्राप्त किया था।[1]

अन्य संस्कारों में यद्यपि दूसरे संस्कार नहीं दिये गये हैं तथापि संकेत रूप में जैन मेघदूतम् में कुछ संस्कार संकेतित हैं। जैसे कि जब नेमिनाथ का जन्म हुआ तो वहाँ पर जन्मोत्सव संस्कार का उल्लेख किया गया। वहाँ पर यह वर्णन है कि बीस भुवन पतियों ने तैंतीस अन्य देवताओं ने सूर्य और चन्द्रमा आदि ने मिलकर जन्मोत्सव संस्कार उल्लास पूर्वक मनाया।[2] इसी तरह से एक दूसरे सन्दर्भ में यह संकेतित है कि जब नेमिनाथ ने जन्म लिया तो उनका सूतिका कर्म सम्पादित किया गया। यह एक ऐसा कर्म है जो अविवाहित कन्याओं द्वारा सम्पादित किया गया। महाराज नेमिनाथ का यह संस्कार दिक् कन्याओं ने सम्पादित किया।[3]

---

1. सीदन्तं किं सदयहृदयोपेक्षसे बन्धुवर्गं
   वाञ्छन् शुद्धिं त्वमिह विविधैर्दुस्तपैस्तैस्तपोभिः?
   दत्तैः पात्रे सततममले गेहिधर्मे स्ववित्तै–
   रन्तः शुद्धस्त्वमपि भविता वर्णमात्रेण कृष्णः।। शी०दू०, 53
   मा जानीष्व त्वमिति मतिमन्। यद् व्रतेनेव मुक्ति–
   र्लेभेश्वभ्रं व्रतमपि चिरं कण्डरीकः प्रपाल्य।
   गार्हस्थ्येऽपि प्रियं! भरतवद्वीतरागादिदोषाः
   संकल्पन्ते स्थिरगुणपद प्राप्तये श्रद्दधानाः।। शी०दू०, 59
2. भक्तिप्रध्वा भवनपतयो विंशिनो व्यन्तरेन्द्रा
   द्वाविंशच्चोपवनवतिविषाधीशितारो रवीन्द्र।
   संगत्य स्वः शिखरे ते चतुष्षयष्टिरिन्द्राः
   जन्मस्नात्रोत्सवभभर्तृहरिं स्वामिनो यस्य तेनुः।। जै०दू० (प्रथम सर्ग), 18
3. यस्य ज्ञात्वा जननमनघं कम्पनादासनाना–
   मास्यां तासांदिव न सहतां पूज्य पूजाक्षणेऽस्मिन्।
   दिक्कन्याः षट्शरपरिमिताः साङगजायाः सवित्र्याः
   सम्यक् चक्रुः कनककदलीसद्मगाः सूतिकर्म।। जै०दू० (प्रथम सर्ग), 16

शीलदूतम् में एक ऐसा सन्दर्भ आया है जिसमें दीक्षा संस्कार की चर्चा की गयी है। वहाँ पर यह कहा गया है कि दीक्षा लेते समय शिष्य केशों का लुञ्चन किया गया और उन्होंने गुरु से शिक्षा प्राप्त करके अपने जीवन को सम्पूर्ण किया। इसके पश्चात् वे नगर के बाह्य उद्यान में गये जहाँ भगवान् शिव के मस्तक पर विराजमान चन्द्रमा की कान्ति से धुला हुआ धवल वातावरण था।[1]

हमारी परम्परा में जो संकेत प्राप्त होते हैं उनमें संस्कारों की संख्या में पर्याप्त मतभेद है। कहीं पर यह उल्लेख प्राप्त होता है कि प्राचीन समय में सोलह संस्कार मुख्य रूप से प्रचलित थे जबकि इनकी संख्या इससे भी अधिक थी। जो भी हो, मनुष्य के जीवन में संस्कारों का महत्व इसलिए स्वीकार किया गया है क्योंकि जहाँ एक ओर संस्कारों से व्यक्ति के जीवन का विकास होता है वहीं दूसरी ओर उसके जीवन की शुद्धि भी होती है। इस विषय में तब की परम्परा में यह कथन है कि संस्कारों से दोष परिमार्जन होता है। इससे अभिप्राय यह है कि माता-पिता के रक्त में जो दोष होते हैं वे परिमार्जित हो जाते हैं यदि सन्तान के किसी अंग में हीनता आने की सम्भावना होती है तो वह हीनता भी दूर हो जाती है। इसी तरह से जो दीक्षा आदि के संस्कार होते हैं उनसे व्यक्ति के जीवन का विकास भी सम्भव होता है इसलिए प्राचीन समय में संस्कार सम्पादन का विशेष महत्त्व था। सन्दर्भित खण्डकाव्यों में यद्यपि अधिक संस्कारों का वर्णन नहीं किया गया है और न ही किन्हीं निश्चित संस्कारों के विषय में विशेष वर्णन प्राप्त है तथापि जीवन के कुछ महत्त्वपूर्ण संस्कार हैं जिनका संकेत इनमें किया गया है।

---

1. कृत्वा लोचं शिरसि सहसा पंचभिर्मुष्टिभिः स्वै-
   लत्विा दीक्षां गुरुवचनतः सैष शिक्षामवेत्य।
   गुर्वादेशादथ निजपुरीमागमत्तां यतिर्या
   बाह्योद्यानस्थित हरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या।। शी० दू०, 7

(६) **आश्रम व्यवस्था-स्वरूप आदि :-**

वैदिक वाङ्मय से यदि हम आश्रम व्यवस्था के संकेत लेने का प्रयत्न करें तो हम यह देख सकते हैं कि यह व्यवस्था इस देश में प्राचीन समय से ही किसी न किसी रूप में लागू हो रही थी। यद्यपि वेदों में ऐसे संकेत तो प्राप्त नहीं हैं जिनके आधार पर यह कहा जा सके कि इस व्यवस्था का प्रचलन तब पूरी तरह से हो चुका था किन्तु ऐसे संकेत वहाँ अवश्य प्राप्त हैं, जिनके आधार पर हम यह कह सकते हैं कि वैदिक काल में किसी न किसी रूप में आश्रम व्यवस्था प्रचलित हो चुकी थी। उस समय ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और किसी रूप में मुनि का संकेत ग्रहण किया जा सकता है। यह मुनि शब्द वानप्रस्थ आश्रम के लिए भी कहा जा सकता है और संन्यासी के लिए भी कहा जा सकता है। जहाँ तक वानप्रस्थ आश्रम का प्रश्न है वहाँ पर यह कहना संगत होगा कि तब यह आश्रम यदि प्रचलित भी था तो इसका स्पष्ट संकेत वहाँ पर नहीं है। मुनि के लिए जिन कर्त्तव्यों का वर्णन वहाँ पर देखा गया है उनके लिए यह कहा गया है कि वे अरण्यवासी होकर भिक्षान्न ग्रहण करें।[१] ऋग्वेद में और ब्राह्मण ग्रन्थों में विद्यार्थी जीवन की प्रशंसा की गई और इस जीवन के लिए करणीय कार्यों का संकेत करते हुए यह विधान किया गया है कि ब्रह्मचारी को चाहिए कि वह सायंकाल सन्ध्या करते समय अग्नि में समिधा डालें।[२]

गृहस्थ धर्म का संकेत उपनिषदों में स्पष्ट है। इसके लिए यह कहा गया है कि जो भी गृहस्थ आश्रम में निवास करने वाला है वह विधि पूर्वक पाणिग्रहण संस्कार करके पत्नी प्राप्त करे और पालन पोषण के लिए अपने द्वारा अर्जित धन सन्तानों को प्राप्त करें।[३] इसी तरह गृहस्थों को उपनिषद् भी संकेतित करते हैं कि वे गृहस्थ रहते।

---

1. मु. उ. 1/2/11
2. ऋक् 10/109/5; श0ब्रा0 11/5/4/18
3. ऋक् 10/85/36; तै.सं. 2/5/2/7

हुए अपनी सन्तति का पालन इस प्रकार करें जिससे सन्तति परम्परा का उच्छेद न होने पावे।[1] उपनिषदों में प्रव्रजित होने के संकेत भी किए गए हैं। एक स्थान पर अरण्यवास का वर्णन करते हुए यह कहा गया है कि अरण्यवासी भिक्षाटन करते हुए अपने जीवन का निर्वाह करें। जो जीवन के अन्तिम समय में गृहस्थ धर्म का परित्याग करें उन्हें चाहिए कि वे अपने मन की समस्त इच्छाओं का परित्याग कर दें।[2] सन्दर्भित खण्डकाव्यों में स्पष्ट रूप से और किसी क्रम के रूप में आश्रम व्यवस्था का वर्णन तो प्राप्त नहीं है किन्तु यत्र-तत्र ब्रह्मचर्य, गृहस्थ आदि आश्रमों के विषयों में संकेत अवश्य प्राप्त होते हैं। जैसे-कि जैन मेघदूतम् में एक स्थान पर यह संकेत किया गया है कि कुमार्ग में प्रवृत्त जो शिष्य होता है आचार्य उसे सन्मार्ग का उपदेश देकर कुमार्ग से विरत करता है। यहाँ पर गुरु और शिष्य की स्थिति का संकेत किया गया है जिसमें शिष्य ब्रह्मचर्य व्यवस्था का ही हो सकता है और इससे ब्रह्मचर्य आश्रम का संकेत लिया जा सकता है।[3] एक दूसरे संकेत में यह निरूपण है जिसमें ब्रह्मचर्य व्रत की महत्ता तो कही गयी है और उस महत्ता में यह बताया गया है कि ब्रह्मचर्य व्रत से ब्रह्म के पद की प्राप्ति होती है।[4]

---

1. प्र. उ.1/1ए तै. उ. 1/11/1 ।
2. मु. उ. 1/2/11: बृह. उ. 3/5/1
3. जल्पन्त्येवं पुनरपि नवीभूतशोकाब्धिमग्ना
   तूष्णीभावं स्वतनुममुचत् साऽऽप्तनन्दीमुखान्।
   तन्त्रं तावत् किमपि निगदच्चन्दनाम्भश्छटाभिः
   सेचं सेचं खरुमिव गुरुर्वाग्भिराबूबुधत्ताम्।। जै. दू. (द्वि. सर्ग), 25
4. गान्धारी चावगिति न परं ब्रह्मतो ब्रह्म जन्मा
   द्धुत्वैतासे ध्रुवमुपयतावप्यवाप्तासि तच्च।
   अस्तुङ्कारात् सुखय ननु नः पादयोपत्यते ते
   दास्यः समस्ते पटुचतुगिरा राज्यमत्याप्यमीश। जै. दू. (तृ. सर्ग), 15

ब्रह्मचर्य आश्रम का एक और संकेत शीलमेघदूत् में प्राप्त होता है। वहाँ पर ब्रह्मचर्य व्रत की महत्ता को इस रूप में प्रतिपादित किया गया है कि यह व्रत ऐसा है जहाँ वासना रूप व्रत समाप्त हो जाता है और जिस व्रत का पालन करने पर ब्रह्मचारी किसी रूप में नारी की कामना नहीं करता। इसका अभिप्राय यह है कि ब्रह्मचर्य आश्रम ज्ञान प्राप्ति करने का आश्रम है और इसी आश्रम में रहकर कोई विद्या प्राप्त करता है।[1]

गृहस्थ आश्रम के विषय में इन खण्डकाव्यों में पर्याप्त सामग्री एकत्रित की गयी है। पिछले सन्दर्भ में जब हमने पाणिग्रहण संस्कार के महत्त्व का अवलोकन किया तो इन खण्डकाव्यों में दाम्पत्य जीवन का बहुत अधिक महत्त्व कहा गया। कहा तो यहाँ तक गया कि गृहस्थ धर्म का पालन किए बिना कोई भी परम परमार्थ प्राप्त नहीं कर सकता। ब्रह्मचर्य और गृहस्थ धर्म की तुलना करते हुए यह भी संकेत स्पष्ट रूप से दिया गया है कि यदि कोई व्यक्ति ब्रह्मचर्य आश्रम में रहता हुआ ब्रह्मचर्य पद प्राप्त कर सकता है तो वह गृहस्थ होकर भी ब्रह्म पद को प्राप्त कर सकता है। इन दूतकाव्यों की कथा भी स्वयं में इस बात का प्रमाण है कि जो पति-पत्नी युक्त हो रहे हैं उनके संकेत एक-दूसरे के पास भेजे जायें क्योंकि दाम्पत्य जीवन की सार्थकता भी वहीं है जब दम्पत्ति परस्पर सामीप्यता प्राप्त करें। जहाँ पारिवारिक जीवन में दाम्पत्य सम्बन्ध धुरी की तरह है वहीं पर सामाजिक व्यवस्था में भी दाम्पत्य जीवन को प्रमुख रूप से स्वीकार किया गया है इसलिए इन खण्डकाव्यों में गृहस्थ धर्म का महत्त्व अंकित है और गृहस्थ धर्म का विवरण भी पूरी तरह से प्राप्त है।

---

1. जिग्ये कामः सुतनु! स मया शीलमासाद्य यस्मात्
संज्ञाहीनौ रसकुरुवकाप्यहो! स्तः सरागौ।
नार्या एकोऽभिलषति भृशं दर्शनं मण्डिताया
वाञ्छत्यन्यो वदनमदिरां दोहहच्छ्मनाऽस्याः।। शी. इ., पृ. 85

संन्यासाश्रम के विषय में यह कहा जा सकता है कि इन ग्रन्थों में यद्यपि इस आश्रम की प्रत्यक्ष चर्चा नहीं है तथापि जिन विशिष्टताओं का कथन इस आश्रम के लिए किया जाता है, वे विशेषताएँ व्यक्ति के लिए कही गई हैं और इस रूप में उस आश्रम को अपनाने का संकेत किया गया है जो परम कल्याण का आश्रम है और जहाँ पहुँचकर व्यक्ति मोक्ष का अधिकारी बन जाता है। जैनमेघदूत्[1] में एक ऐसा संकेत है जिसमें यह कहा गया है कि जो कोई किसी भी कामिनी के प्रति आकर्षित नहीं होता, यहाँ तक कि अपनी पत्नी के प्रति भी कामासक्त नहीं होता, वह मोक्ष का अधिकारी बनता है। जो कोई विषयों से विरक्त होता है जिसके मन में काम का विषैला विष अपना प्रभाव नहीं छोड़ पाता वही सच्चा सुखी है, वही अपने प्रारब्ध के भोगों से मुक्त है और यथार्थ में वही संन्यासी भी है। ऐसा व्यक्ति न लोक की परवाह करता है और न ही वह लोक निन्दा से भय का अनुभव करता है। वह निरन्तर इस प्रकार की भावना से भरा हुआ होता है जिसमें उसे केवल मुक्ति की कामना रहती है।

---

1. कारुण्योकश्चरिषु विघृणो बन्धुतायां सुतृष्णक्।
   मुक्तौ मूर्तिद्विषि कुलकनीस्वीकृतौ वीततृष्णः।।
   कौलीनाप्तेर्दरविरहितः संसृते कान्दिशीकः।
   प्रारब्धांस्त्यजसि भजसेऽ प्रस्तुतांस्तन्नमस्ते।।
   जै. मे. दू. 47

मुक्ति की कामना में जाने वाले ऋषियों के लिए जो संकेत है उनमें यह भी कहा गया है कि मुनि के मन में परम करुणा होनी चाहिए। वही सज्जन होते हैं जिनके कार्य का परिणाम सदा सुखकारी होता है। जिन्होंने दीक्षा प्राप्त की हुई होती है, वे ही मुक्ति की कामना कर सकते हैं और उन्हें ही मुक्ति प्राप्त भी होती है। इसलिए एक स्थान पर यह कहा गया है कि स्त्री दीक्षा अर्थात् तपस्या से विरहित होती है इसलिए वह मोक्ष की अधिकारिणी नहीं होती।[१]

मोक्ष मार्ग पर चलने वालों की प्राप्तियों का कथन करते हुए यह कहा गया है कि जो मोक्ष मार्ग पर चलना चाहते हैं वे संसार के सुखों की कामना नहीं करते हैं। जो इस मार्ग पर चलते हैं, वे एक प्रकार से संन्यासी ही हैं और मोक्ष मार्ग के पथिक होते हैं।[२]

इसी प्रकार से एक अन्य सन्दर्भ में यह निरूपण किया गया-है कि जो भी श्रेष्ठ मार्ग के पथिक होते हैं उनके हृदय में किसी भी प्रकार का शोक नहीं रह जाता है। वे उस ज्ञान की प्राप्ति की कामना करते हैं जो ज्ञान विमल है और जिस ज्ञान की प्राप्ति से मनुष्य का जीवन भी विमल हो जाता है।

---

1. नर्तेऽस्त्रीनां नियतमवरावावरीमां तपस्याम्।
   यस्योदर्कः सततसुखकृत्कृत्यमर्घ्यं सतांसत्।
   दामत्कर्मप्रसितभवनो मोचयिष्ये चरीन् वा
   नेभिः प्रत्यादिशदिति हरिभूरि निर्बन्धयन्तम्।।

   जै. मे. दू. 48

2. ने. दू. 124

वे संसार के समस्त कामविकारों का उच्छेद करने में सक्षम होते हैं और कोई भी सांसारिक विकार उनको बाधित नहीं करता है। वे जिस प्रकार से अपने जीवन के कामविकारों को मिटा पाते हैं, उनमें उनके सदाचरण का ऐसा प्रभाव होता है कि इससे वे कठिन से कठिन अपने जीवन के विकारों से दूर रह पाते हैं। उनके हृदय में न कोई क्लेश रहता है और न कोई सांसारिक विकार रहता है। वे निर्मल चित्त वाले होकर मोक्ष के सुख का अनुभव करते हैं। मोक्ष सुख का आस्वाद इस प्रकार का है कि वहाँ पर किसी प्रकार का सांसारिक दुख होता ही नहीं है।[१]

इस रूप में इन ग्रन्थों में वर्णाश्रम व्यवस्था के जो संकेत प्राप्त होते हैं, वे भारतीय परम्परा के उत्कृष्ट संकेत हैं।

---

1. सच्चारित्रं यतिपतिरसौ कर्मवल्लीवित्रम्
   दीर्घ कालं कलितविमल ज्ञान दानः प्रपाल्यः।
   भेजे स्वर्गं त्रिदशललनालोचनात्जाकेतुल्यो
   निःशल्यान्तर्निरुपमसुखं वीतनिःशेषदुखम्।।
   शी. दू. 127
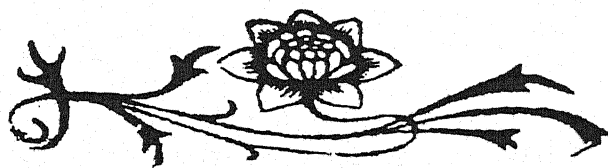
तृतीय अध्याय

(श्रृंगार प्रसाधन एवं सौन्दर्य)

तृतीय अध्याय

(श्रृंगार प्रसाधन एवं सौन्दर्य)

मनुष्य की यह सहज और स्वभाविक प्रवृत्ति है कि वह स्वयम् को सुन्दर रूप में दिखाना चाहता है और उसकी यह कामना रहती है कि सभी उसकी ओर आकर्षित होकर उसे ही सुन्दर और दर्शनीय मानें। इसी दृष्टि कोण से वह अनेक प्रकार से अपने आप को आभूषित करता है और निरन्तर सजता-संवरता है। इसमें अन्य आभूषणों और अलंकारों की अपेक्षा वस्त्रों का बहुत अधिक महत्व होता है। वस्त्र जहाँ एक ओर सर्दी, गर्मी और वर्षा से व्यक्ति की रक्षा करते हैं, वहीं वे व्यक्ति की सुन्दरता में और अधिक चारुता पैदा कर देते हैं। इसमें भी स्त्रियाँ अपने वस्त्रों के प्रति बहुत अधिक सम्वेदन शील होती हैं, तथा वे वस्त्र धारण कर स्वयम् सुन्दर बनाती हैं। इस रूप में संदर्भित काव्यों में अन्य आभूषणों और अलंकारों के साथ-साथ वस्त्रों का उल्लेख स्थान-स्थान पर किया गया है।

(क) <u>वस्त्र दुकूल</u> :-

सन्दर्भित काव्य संग्रहों में अनेक प्रकार के वस्त्रों का उल्लेख किया गया है जैसे कि एक स्थान पर श्रीकृष्ण की पत्नियों के वस्त्रों का वर्णन करते हुए यह कहा गया है कि वे श्वेत और कोमल साड़ियाँ धारण किये थीं। इसी प्रकार से एक दूसरे स्थान पर यह वर्णन आया है कि उस समय पहने जाने वाले वस्त्र इस प्रकार के थे, जो बहुत ही पतले थे और जो जल में भींग जाने पर शरीर में चिपक जाते थे।[1]

---

1. जै. मे.दू. पृ0 61, 67

मेघदूतम् में श्रृंगार की उद्भावना के अनेक ऐसे प्रसंग हैं जिनमें अनेक प्रकार के वस्त्रों का कथन हुआ है। एक स्थान पर अलका का वर्णन करते हुए यह निरूपित किया गया है कि अलकापुरी में चंचल हाथों वाले प्रियों के द्वारा नारा खोल देने से ढीले पड़े रेशमी वस्त्र को प्रेम से हटाने पर लज्जा से विभोर विम्बोष्ठियों का मुट्ठी भर चूर्ण सामने जगमगाते हुए रत्न दीपों के पास पहुँचकर भी व्यर्थ हो जाता है।[१]

एक दूसरे सन्दर्भ में भी इसी प्रकार का वर्णन है जिसमें कल्पवृक्ष की विशेषता का उल्लेख है। इस वृक्ष की इस विशेषता में एक विशेषता यह है कि यह वृक्ष अन्य वस्तुओं के साथ-साथ रंग विरंगे वस्त्र भी प्रदत्त करता है जिसे अलका की युवतियाँ धारण करती हैं।[२] इस रूप में मेघदूतम् में अनेक प्रकार के वस्त्रों का कथन किया गया है।

---

1. नीवीबन्धोच्छ्वसितशिथिलं यत्र बिम्बाधाराणाम्
   क्षैमं रागादनिमृतकरेष्वाक्षिपत्सु प्रियेषु।
   अर्चिस्तुडग्ानभिमुखमपि प्राप्य रत्नप्रदीपान्
   ह्रीमूढानां भवति विफलप्रेरणा चूर्णमुष्टिः।। मे0दू0(उ.मे.)7
2. वासश्चित्रं मधु नयनयोर्विभ्रआदेशदक्षम्
   पुष्पोद्भेदं सह किसलयैर्भूषणानां विकल्यान्।
   लाक्षारागं चरण कमलन्यासयोग्यं च यस्या–
   मेकः सूते सकलमबलामण्डनं कल्पवृक्षः।। वही, पृ0 12

नेमिदूतम् में एक स्थान पर नील वस्त्र का कथन प्राप्त होता है। वहाँ पर यह कथन है कि किसी एक धवल भवन के ऊपर जब नीला मेघ क्षण भर के लिए आ जाता है, तब वह ऐसा प्रतीत होता है जैसे एक क्षण के लिए श्रीकृष्ण के भाई बलराम जी ने अपने गौर वर्ग वाले शरीर के ऊपर नीला वस्त्र धारण कर लिया होवे।[१]

इसी खण्डकाव्य में एक स्थान पर यह वर्णन है कि राजीमती जब अपने प्रिय का स्मरण करती हैं तो वे श्रीकृष्ण के साथ उनका स्मरण करती हैं। वे कहती हैं कि मैं जब तुम्हारा स्मरण करती हूँ तो मुझे यह ध्यान पर आता है कि जब श्रीकृष्ण के साथ यात्रा करेंगे तो निश्चित ही श्रीकृष्ण पीताम्बरधारी होगें। उनका पीताम्बर बड़ा ही मोहक होगा और वह उनका रूप सुन्दर होगा। मैं आपके और श्रीकृष्ण के उसी रूप का सतत स्मरण करती हूँ।[२]

---

1. प्रत्यासत्तिं विशदशिखरोत्संग भागे पयोदे।
   नीलस्निग्धे क्षणमुपगते पुण्डरीकप्रभस्य।
   शोभा काचिद्विलसति मनोहारिणी यस्य संप्र–
   ल्यंसन्यस्ते सति हलभृतो मेचके वाससीव।।
   ने. दू., पृ. 69
2. पुष्पाकीर्णं पुरि सह तदा यस्त्वया राजमार्गं
   यास्यत्युद्य ध्वजनिवसनं चन्दनांभरछरांकम्।।
   शौरिं पीताम्बरधारमनु क्ष्माधरे मेघमेनं
   प्रेक्ष्योपान्तस्फुरिततडितं त्वां तमेव स्मरामि।।
   वही, पृ. 60

मेघदूतम् काव्य में एक स्थान पर एक और इस प्रकार का सन्दर्भ है जिसमें यह वर्णन आया है कि नीलवस्त्र को युवतियाँ धारण करती थी। मेघ को मार्ग का निर्देश करते हुए यक्ष यह कहता है कि जब तुम गम्भीर नदी के पास पहुँचोगे तब वेतसलता की शाखाओं रूपी हाथों से मानों कुछ पकड़ा गया एवं तटरूपी नितम्बों से खिसका हुआ नीलवर्ण का उसका वस्त्र हटाकर लम्बे हुए तुम्हारा आगे की ओर प्रयाण करना कठिन होगा।[१]

एक दूसरा सन्दर्भ इस प्रकार का है कि जिसमें अत्यधिक सूक्ष्म वस्त्र की चर्चा की गई है और उन वस्त्रों के सदृश कल्पवृक्ष के पल्लवों का कथन किया गया है।[२]

इस रूप में हम यह देख सकते हैं कि इन खण्डकाव्यों में सन्दर्भों के अनुरूप अनेक स्थानों पर विविध प्रकार के वस्त्रों और दुकूलों का कथन किया गया है।

---

1. तस्याः किञ्चित् करधृतमिव प्राप्तवानीरशाखं।
   हत्वा नीलं सलिलवसनं मुक्तरोधोनितम्बं।।
   प्रस्थानं ते कथमपि सखे लम्बमानस्य यदि।
   ज्ञातास्वादो विवृतजघनां को विहातुं समर्थः।।
   मे. दू. (पू.) 43
2. हेमाम्भोजप्रसवि सलिलं मानसस्याददान्तः।
   कुर्वन्कामं क्षणमुखपटप्रीतिमैरावतस्य।।
   धुन्वन्कल्पद्रुमकिसलयान्यंशुकानीव वातै।
   र्नानाचेष्टैर्जलद ललितैर्निर्विशेस्तं नगेन्द्रम्।।
   वही, पृ. 64

पवनदूतम् में कौसेय वस्त्र का संकेत तब किया गया है जब वहाँ पर काञ्चीपुर की स्त्रियों के सौन्दर्य के विषय में और उनके द्वारा धारण किए जाने वाले वस्त्रों का कथन किया गया है। वहाँ पर ऐसे अंशुकों का संकेत है जो चीन देश के बने हुए हो सकते हैं। कहा यह गया है कि उस काञ्चीपुर की स्त्रियों की जल क्रीड़ा में कौतूहल के वेग से चीन देश में निर्मित सूक्ष्म रेशमीय उत्तरीय के हट जाने से कपिशवर्णी वक्षस्थल पर सखी की भाँति सुबला नामक नदी जलावर्त स्वरूप रहस्य पूर्ण मुस्कान सहित फेन समूह के बहाने से अपने तरंगरूपी हाथों से शीघ्र श्वेतांचल द्वारा देती है।[1]

शीलदूतम् में भी एक ऐसा सन्दर्भ है जिसमें स्त्रियों की लज्जाशीलता का कथन किया गया है। उनकी लज्जा को आवरित करने में मुख्य रूप से वस्त्र ही होते हैं जिन्हें आवरण कहा जाता है। जब कभी भी जन काम के वश में होते हैं तो वे स्त्रियों के शरीर पर पड़े हुए वस्त्रों को खींच लेते हैं और स्त्रियाँ लज्जा से आवरित हो जाती है।[2]

---

1. आम्रं लीलाविहसितमिव श्यावतामभ्युपेते।
   सद्यः केम व्यतिकर मिषादर्पयत्यंशुकान्तम्।।
   अम्भःक्रीडाकुतुकरमसभ्रष्टचीनोत्तरीये।
   यन्नारीणामुरसि सुबला बीचिहस्तैः सखीव।।
   प. दू., प. 45
2. यत्र स्त्रीणां प्रणयिषु हठादाक्षिपत्सु क्षपायां।
   क्षौभं साक्षाद् मनसिजपराधीनतामागतेषु।।
   नित्योद्योतानपि मणिमयान् प्राप्य दीपान् प्रदीपान्।
   ह्रीमूढानां भवति विफलप्रेरितश्चूर्णमुष्टिः।।
   वही, पृ.29

(ख) आभूषण एवं सौन्दर्य प्रसाधन :-

(१) कर्णाभूषण, हार, कंकण, माला कुण्डलादि

सन्दर्भित काव्यसंग्रहों में अनेक प्रकार के वस्त्रों के साथ-साथ अनेक आभूषणों का भी कथन किया गया है जिन्हें धारण करने पर स्त्रियाँ अपनी सुन्दरता से अपना सौन्दर्य विखेरती रहती थीं। इन आभूषणों, स्वर्णाभूषणों तथा मणि के आभूषणों की चर्चा विस्तृत रूप से की गई है।

मेघदूतम् में जब मेघ के मार्ग का प्रशस्तीकरण किया गया तो वहाँ पर यह कहा गया कि तुमनीलवर्ण के हो और जब तुम मार्ग में जाते हुए जल लेने के लिए उतरते पृथ्वी का स्पर्श करोगे तो ऐसा प्रतीत होता है जैसे- पृथ्वी इन्द्रनीलमणि की एकलर वाली माला धारण किए है।[१]

इसी प्रकार से एक स्थान पर स्त्रियों के द्वारा धारण किया जाने वाला कंकण भी चर्चित है। वहाँ पर देवनाङ्गनाएँ कंकण धारण करती थीं- ऐसा संकेत है।[२]

---

1. त्वयादातुं जलभवनते शार्ङ्गिणो वर्णचौरे।
   तस्याः सिन्धोः पृथुमपि तनुं दूरभावात् प्रवाहम्।।
   प्रेक्षिष्यन्ते गगनगतयो नूनभावर्ज्य दृष्टी-
   रेकं मुक्तागुणमिक भुवः स्थूलमध्येन्द्रनीलम्।।
   मे. दू. (पू.) 46
2. तत्रावश्यं वलयकुलिशोद्घट्ट्नोद्गीर्णतोयं
   नेष्यन्ति त्वां सुरयुवतयो यन्त्रधारागृहत्वम्।
   ताम्यो मोक्षस्तव यदि सखे! धर्मलब्धस्य नस्यात्
   क्रीडालोलाः श्रवणपरुषैः गर्जितैर्भाययेस्ताः।।
   वही, पृ. 61

एक स्थान पर ऐसा संकेत किया गया है जिसमें मणियों का योग आभूषण की तरह होता हुआ बताया गया है। मेघदूतम् के वर्णन में एक स्थान पर कहा गया है कि प्रियतम के समान कैलाश की गोद में खिसक गया है गंगा रूपी वस्त्र जिसका। ऐसी अलका को प्रियतम की गोद में खिसक गई है साड़ी जिसकी ऐसी कामिनी की तरह देखकर अवश्य पहचान जाओगी। जो अलका वर्षा के समय जल बरसाने वाले मेघ समूह को वैसे ही धारण करती है जैसे क्रोधरहित कोई कामिनी मोतियों की लड़ियो से गुथे केशपाश को धारण करती है।[१०]

कमर में पहने जाने वाली करधनी का उल्लेख भी मेघदूतम् में किया गया है। वहाँ पर यह वर्णन किया गया है कि जब तुम मेघ! मेरी पत्नी को देखोगे तो वह मोतियों की लड़ी से युक्त करधनी पहने हुए दिखाई देगी।[२]

---

1. तस्योत्संगे प्रणयिनि इव स्रस्तगंगादुकूलां
   न त्वं दृष्ट्वा न पुनरसकां ज्ञास्यसे कामचरान्।
   या वः काले वहति सलिलोद्गामुच्चैर्विमाना
   मुक्ताजालग्रगितमलकं कामिनीवाम्रवृन्दम्।।
   मे. दू. (पू.) 63 (उ.) 18
2. वामश्चास्याः कररुहपदैर्मुच्यमानो मदीयै
   र्मुक्ताजालं चिरपरिचितं त्याजितो दैवगत्या।
   सम्भोगान्ते मम समुचितो हस्तसंवाहनानां
   यास्त्यूरूः सरसकदलीस्तम्भगौरश्चलत्वम्।।
   मे. दू. (30) 35

पवनदूत में एक तुलना इस प्रकार की दी गई है जिसमें यह वर्णन है कि जल के बिन्दु अपनी धवलता से ऐसे प्रतीत हो रहे हैं जैसे- कुन्द के श्वेत पुष्प होवें अथवा जल के वे बिन्दु ऐसे प्रतीत हो रहे हैं जैसे- धवलमोतियों के जाल होवें।[१] इससे यह संकेत है कि स्त्रियाँ केश जाल से स्वयम् को सजाती थीं।

इसी खण्डकाव्य में एक स्थान पर स्त्रियों के इतने प्रकार के आभूषणों का उल्लेख है जिन्हें धारण किए जाने पर जैसे- समुद्र रत्नहीन हो गया हो। वहाँ पर वर्णन है कि विजयपुर में मोती, मरकत बहुमूल्यनीलमणि, सौगन्धिक, शंख, मूँगें आदि इतने अधिक प्राप्त हैं कि अगस्त्य द्वारा शोषित सागर मानों रत्नहीन हो गया है।[२]

इस रूप में जिन आभूषणों की चर्चा की गई है, उनमें मोती, मूँगें और शंखादि के प्रयोग का संकेत इस सन्दर्भ में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इनके प्रयोग से आभूषणों का सौन्दर्य और उनकी विशेषता बढ़ना स्वाभाविक है।

---

1. तस्या लीलासरित इव ताः स्रोतसि श्रोणिदहने,
   तोयक्रीडां यदि विदधते दाक्षिणात्यास्तरण्यः।
   वीचिक्षोमैः स्तनपरिसारेष्वस्त हारेषु, तासां
   मुक्ताजालं रचय तदपां विन्दुभिः कुन्दगौरैः।।

   प. दू., पृ. 50

2. रत्नैर्मुक्तामरकतमहानील सौगन्धिकाद्यैः
   शंखैबालावलय रचना बन्धभिर्विद्रुमैश्च।
   लोपामुद्रारमणमुनिना पीतनिःशेषवारेः
   श्री सर्वस्वं हरति विपदं यत्र रत्नाकरस्य।।

   वही, पृ. 81

एक स्थान पर जिन भक्ति को मौक्तिक हार के सदृश कहा गया है। वहाँ पर यह बताया गया है कि जहाँ बन्धुओं के हृदय में मौक्तिक हार के सदृश जिन भक्ति निवास करती है। आकृति में शील धर्म के साथ कान्ति स्फुरित होती है तथा मन में आपके कारण उत्पन्न सुख है और सीमन्त में कदम्ब पुष्प।[1]

एक सन्दर्भ ऐसा भी है जिसमें यह वर्णन आया है कि परस्पर के कलह को शान्त प्रकृति वाला ही रोक सकता है। प्रेमी प्रेमिका केलि गृह के ऊपर बैठे हुए हैं, अर्धरात्रि हो चुकी है। प्रणय वचन असफल हो चुके हैं, फलतः प्रणय-कलह हो रहा है और कर्णफूल अस्त्र का काम कर रहे हैं।[2] इस वर्णन में आभूषण के रूप में कर्णफूल की चर्चा की गई है। एक दूसरे संकेत में भी युवतियों द्वारा धारण किया जाने वाले कर्ण पत्र की चर्चा है जिसे युवतियाँ कानों में धारण करती हैं। वहाँ पर यह वर्णन है कि वह कर्णपत्र ऐसा है मानों प्रेम पत्र होवे।[3]

---

1. अर्हद् भक्तिर्वसति हृदये तारहारेण साकं
   मूर्तौ कान्तिः स्फुरति च सदा शीलधर्मेण सार्धम्।
   चित्ते सातं धनसमयजं विद्यते साम्प्रतं सत्
   सीमन्ते च त्वदु पगमजं यत्र नीपं वधूनाम्।। शी० दू०, पृ० 28
2. व्यर्थी भूतप्रियसह चरी चारुवाचां निशीक्षे
   रोषादस्त्रीकृत कुवलयोत्तं सविस्र सिमाल्यम्।
   यूनां यत्र प्रणय कलहं केलि हर्म्याग्रभाजाम्
   इन्दु प्रत्यादिशति सविधीभूय शाश्वत् करेण।। प०दू०, पृ० 88
3. धत्ते सघस्त्वदुपगमित प्रेम लेखपत्रं सा
   तालीपत्रं प्रिय सहचरी कर्णपाशच्युतेऽपि ।। वहीं पृ० 108

सामान्यतः स्त्रियाँ अपने को आभूषित करने के लिए अनेक प्रकार के आभूषण धारण करती हैं तथापि वे उस अवस्था में अपने आभूषणों का परित्याग भी कर देती हैं जब वे अपने प्रिय से अपने प्रति प्रेम का प्रदर्शन नहीं पातीं हैं। पवन दूत में कुवलयवती के स्वरूप की चर्चा करते हुए लिखा गया है कि वह चन्द्रमा से घृणा करती है, केश प्रसाधन में रुचि नहीं लेती, हार दूर फेंक देती है, चन्दन की निन्दा से प्रसन्नता का अनुभव करती है।[1]

अन्य अनेक आभूषणों के बीच भी कामिनियों को कर्णाभूषण अत्यधिक प्रिय होते हैं। इसीलिए जब वे पत्तिवियुक्ता होती हैं अथवा किसी भी कारण से वे विरहिणी होती हैं तो वे अपने कर्णाभूषणों का परित्याग कर देती हैं। एक संदर्भ में इसी प्रकार का भाव दिया गया है जिसमें यह वर्णन है कि कुवलयवती अपने प्रिय के वियोग से इतना अधिक व्यथित है कि वह अपने कानों में धारण किये गए कर्णाभूषणों का परित्याग कर देती है।[2]

---

1. धत्ते द्वेषं शशिनि कुरुते न ग्रहं केशहस्ते
   दूरे हारं क्षिपति रमते निन्दया चन्दनस्य।
   वक्तुं देय त्वमि परमसौ स्वामवस्थां कथञ्चिद्
   गाछोद्वेगा नयति कविताचिन्तया वासराणि।।

   प0दू0, पृ0 113
2. सा वैरस्यादसितनयता हेमतालीदलानां
   प्रत्याख्यानात्प्रकृतिसुभगं कर्णपाशं विभर्ति।
   तद् गात्राणां किमपि सहसा दुर्बलत्वं विचिन्त्य
   त्यक्तं त्रासाद गुणमिव मनो जन्मना कार्मुकस्य।।

   वही, पृ0 128

माला धारण करना भी स्त्रियों की एक मनोहर कामना है और स्त्रियाँ सजने के लिए प्रायः अपने गले में अनेक प्रकार की माला धारण करती हैं। मालाओं में मोती के दानों वाली मालायें धारण करती हैं। मालाओं में मोती के दानों वाली मालाएँ प्रचलित हैं और उनका संकेत अनेक स्थानों पर किया गया है। एक स्थान पर द्वारिका की सुन्दरता का वर्णन करते हुए यह कहा गया है कि जो द्वारिका नगरी वर्षा काल में भवन शिखरों से जल बरसाने वाले मेघ समूह को उसी तरह से धारण करता है, जैसे कोई सुन्दर स्त्री मोतियों की लड़ियों से गूथे गए केश पाश को धारण करती है।[१]

एक स्थान पर अन्य अनेक आभूषणों का उल्लेख होने के साथ-साथ फूलों के मुकुट का संकेत किया गया है। वहाँ कहा गया है कि श्रीकृष्ण पत्नी ने भी श्याम के शरीर पर श्यामता के होते हुए उनके मस्तक पर पत्रवल्ली की रचना की और उनके सिर पर फूलों का मुकुट रखकर दिन में ही चन्द्र तथा ताराओं से युक्त आकाश को दिखाया।[२]

---

1. तस्या हर्षादविकृतमहास्ते प्रवेशाय पुर्या
   निर्यास्यन्ति प्रबरयदवः सम्मुखाः शौरिमुख्याः।
   या कालेस्मिन् भवनशिखिरैः प्रक्षरद्वारिधन्ते
   मुक्ताजालग्रथितमलकं कामिनीवाभ्रवृन्दम्।।
   ने. दू., पृ. 63
2. श्रीखण्डस्य द्रवनवलवैर्नर्मकर्माणि बिन्दु
   विन्दून्यासं वपुषि विमले पत्रवल्लीर्लिलेख।
   पौष्पापीयं व्यधित च परा वासरे तारतारा
   सारं गर्भस्थितशशधरं व्योम संदर्शयन्ती।।
   जै. मे. दू.,पृ. 46

एक दूसरा सन्दर्भ ऐसा भी है जहाँ पर कमलों की माला को में खला की तुल्यता प्रदान की गई है। एक स्थान पर श्रीकृष्णस्त्री ने श्री नेमि नाथ से कहा कि आप मूर्तिमान राग से बधे होकर भलामुक्ति कैसे प्राप्त कर सकोगे। उसने लाल कमलों की माला मेखला की भाँति भी नेमि के कटि प्रदेश में इस प्रकार से बाँध दिया जैसे-प्रकृति आत्मा को बाँध देती है।[१]

स्त्रियों के द्वारा धारण किए जाने वाले आभूषणों के साथ-साथ पुरुषों द्वारा धारण किए जाने वाले आभूषणों की चर्चा भी सन्दर्भित खण्डकाव्यों में की गई है। एक स्थान पर यह कहा गया है कि नेमिनाथ फूलों का मुकुट पहने हुए थे, गले के नीचे तक लटकती हुई चमेली की माला पहने हुए थे, चमेली के पुष्पों का बाजूबन्द पहने हुए थे, मौलसिरी के कंकण और कमलिनी की अंगूठी धारण किये हुए थे।[२]

---

1. धन्या लोकोत्तर! तनुमता रागपाशेन बद्धो
मोक्षं गाये कथमिति मितं सस्मितं भाषमाणा।
व्यक्तं रक्तोत्सलविरचितेनैव दत्म्ना कटीरे
काञ्चीव्याजात् प्रकृतिरिव तं चेतनेशं बबन्ध।। जै.मे.दू. , पृ0 47

2. पौष्पापीडं शितिशतदलैः क्लृप्तकणवितंसः।
कण्ठन्यञ्चद् विचकिललुन् मालभारी सलीलम्।
तत्केयूरो बकुलवलयः पद्‌मिनी तन्तुवेदी
रेजे मूर्तात्प्रति मम पतिः पुष्पितात् पारिजातात्।। वही, पृ0 48

(२) चन्दन जल, कस्तूरी लेप, लाक्षारस, केशविन्यास आदि :-

इन खण्ड काव्यों में अनेक प्रकार के प्रसाधनों के उपयोग का संकेत हम स्थान-स्थान पर प्राप्त कर सकते हैं। चन्दन एक ऐसा द्रव्य है जो सुगन्धित होने के साथ-साथ, शीतलता और मादकता के भी वाहक हैं। इसलिए काव्यकारों ने स्थान-स्थान पर इसके प्रयोग का संकेत किया है। जब कोई युवती अपने प्रिय से पृथक् हो जाती थी तो वह विरह वेदना में इतना अधिक व्याकुल हो जाती थी कि उसकी सखियाँ उसे शान्त करने के लिए चन्दन मिश्रित जल का प्रयोग करती थीं जिससे न केवल उसका तन शान्त होता था अपितु उसका मन भी शान्त हो जाता था। पवनदूतम् में एक स्थान पर यह उल्लेख आया है कि एक विरहिणी विरह-व्यथा में इतनी अधिक संतृप्त हो गई है कि उसके लिए चन्दन मिश्रित जल का लेप निषिद्ध हो गया है और शीतल वायु भी उसके लिए अब किसी प्रकार से शान्ति की वाहक नहीं रह गई है। इस स्थिति में उसकी सखियों के पास कोई ऐसी सामग्री शेष नहीं रह गई है जिससे वे अपनी सहेली को शान्त रख सकें।[१]

---

1. द्वेषः क्रीडाविपिनवसतौ चन्दनाम्भोनिषेधः।
प्रत्याख्यानं सरस नलिनीतालवृन्तानिलस्य।।
जातस्तस्यां कथमपि सखीबुद्धिजनस्त्वद्वियोगे।
मूर्च्छावेग व्यपगमविधेरेष एव प्रकारः।।

पoदूo, पृo 72

ऐसी ही स्थिति एक अन्य युवती की भी दिखाई देती है। वह अपने प्रिय के वियोग की व्यथा में इतनी तप्त हो गई है कि शीतलता प्रदान करने के लिए लगाया गया उसके उरोजों का चन्दन सूख गया है।[1]

मेघदूत का वर्णन इस सन्दर्भ में स्पष्ट दिशा निर्देश करता है जिसमें यह आया है कि उज्जयिनी में युवतियाँ जलक्रीडा में निरत हैं। वे जब जल क्रीडा करती हैं तो उनके शरीर का चन्दन राग जल में मिश्रित हो जाता है जो अपनी सुगन्धि से सभी ओर के वातावरण को व्याप्त कर देता है।[2]

नेमिजैनदूतम् में श्री नेमिनाथ जब केलि में व्यस्त होते हैं तो अनेक रमणियाँ अपनी सोने की पिचकारियों से सुरभित जल भरकर नेमिनाथ के ऊपर डालती हैं और उन्हें सरोबार कर देती हैं।[3]

---

1. तस्यास्तीव्रस्मरहुतभुजा दह्यमानाङ्गयस्टे
   न्यस्तं सद्यः स्तनपरिसरे चन्दनं शोषमेति।
   उक्तैः किं वा बहुभिरपदारोपितस्वान्तवृत्ते
   स्त्वय्यान्तः कुवलयदृशो जीवरक्षा प्रकारः। प० दू० 94

2. भर्तुः कण्ठछविरितिगणैः सादरं वीक्ष्यमाणः।
   पुष्पं यायास्त्रिभुवनगुरोर्धाम चण्डीश्वरस्य।
   धूतोधानं कुवलयरजो गन्धभिर्गन्धवत्यास्तोय
   क्रीडा निरतयुवतिस्नानतिक्तैर्मरुद्भिः।।   मे० दू० (पू०) 33

3. वही, पृ० 63

चन्दन रस के प्रयोग से रुक्मिणी भी नेमिनाथ को सरोबार करती हैं। वे नेमिनाथ से कहती हैं कि आप हमारी बातों को उसी प्रकार सुन और सह लेते हैं जैसे पृथ्वी सभी के भार को सहन कर लेती है। कहा गया है कि सम्मानित स्त्री उसी तरह से शोभित होती है जैसे की शिव के मस्तक पर गंगाजी शोभित होती है।[1]

एक अन्य स्थान पर जल के उस स्वरूप का उल्लेख किया गया है जो चन्दन मिश्रित है। एक स्थान पर यह कहा गया है कि हे नाथ! इस पर्वत के समीप चमकती हुई बिजली वाले इस मेघ को देखकर उस द्वारिका में प्रवेश करने पर चन्दन जल की आभा से चिन्हित लहराती हुई पताका वस्त्र, बिखरे हुए पुष्प युक्त नृपति पथ पर तुम्हारे साथ पीताम्बरधारी कृष्ण जायेंगे।[2]

---

1. आचख्यावित्यथ सविनयं भीष्मजा राजदन्त–
ज्योत्स्नाव्याजान्मलयजरसैः स्वामिनं सिञ्चती तम्।
विश्वेवास्मान् सहसि भगवन्नुश्यसे तद् विशकं
स्त्री गंगेवाधिवसति शिरो मानितापीश्वरस्य।।
जै.मे.दू., पृ. 70
2. पुष्पाकीर्णं पुरि सह तदा यस्त्वया राजमार्गं
यास्यत्युद्यद् ध्वजनिवसनं चन्दनांभंश्छटाकम्।
शौरिं पीताम्बरधरमनु क्ष्माधरे मेघमेनं
प्रेक्ष्योपान्तस्फुरितडितं त्वां तमेव स्मरामि।।
ने. दू., पृ 90

जिस प्रकार से चन्दन जल का उल्लेख इन ग्रन्थों में किया गया है, उसी तरह से कस्तूरी से मिश्रित लेप और उसके जल का संकेत भी किया गया है। यमुना में जब सुह्य देश की युवतियाँ स्नान करती हैं तो उनके स्तनों के कस्तूरी लेप से यमुना का जल सुगन्धित हो जाता है।[१]

एक दूसरे स्थान पर विलासिनी स्त्रियों के स्वरूप का वर्णन इस रूप में किया गया दिखाई देता है जिसमें यह कहा गया है कि उस विशेष राजधानी में कामिनियाँ कस्तूरी के लेप को अपने वक्षस्थल में लगाती हैं और उसी शीतलता को धारण करती हुई अभिसार के लिए अपने प्रियजनों के पास जाती है।[२]

---

1. तोयक्रीडासरसनियतत्सुह्य सीमन्तिनीनाम्
   वीचीद्यौतैः स्तनमृगमदैः श्यामलीभूय भूयः।
   भागीरध्यास्तपनतनया यत्र निर्यात देवी
   देवं यायास्तमथ जगतीपावनं भक्तिनम्रः।।

   प.दू., पृ. 69
2. मूकीभूतां मरकतमयीं हारयष्टिं दधाना
   यस्मिन् बालामृगमदमसीयिच्छिलेषु स्तनेषु।
   चेतीवर्ति स्मरहुतवहं दीपितं स्नेहपूरैः
   कृत्वा यान्ति प्रियतमगृहान् अन्धकारेघनेऽपि।

   प.दू., पृ. 82

पैरों में लगाने वाले लाक्षारस के उल्लेख के अनेक सन्दर्भ प्राप्त हैं। पवनदूत और मेघदूत में पैरों में लगाए जाने वाले लाक्षारस का उल्लेख किया गया है। पवनदूत में वर्णन आया है कि विजयनगर की कामिनियाँ अपने पैरों में महावर लगाकर घूमती हैं और अपने प्रियों की अभिलाषा करती हैं। मार्गों में पैरों के लाल निशान ऐसे लगते हैं जैसे रक्त अशोक के फूल भूमि पर बिछ गए हैं। यद्यपि सूर्य की किरणें जब उन पर पड़ती हैं तो वे छिप जाते हैं।[१]

मेघदूत के उत्तर भाग में एक ऐसे कल्पवृक्ष का संकेत किया गया है जो कामिनियों के धारण करने योग्य अनेक प्रकार के आभूषणों की चर्चा करता है। वहाँ पर लिखा गया है कि वह वृक्ष न केवल अनेक प्रकार के आभूषणों को प्रदान करता है, अपितु वह युवतियों के पैरों में लगाए जाने योग्य लाक्षारस अर्थात् महावर की उत्पत्ति भी करता है।[२]

---

1. भ्राम्यन्तीनां तमसि निविडे वल्लंभाकाङ्क्षिणीनां
   लाक्षारागाश्चरण गलिताः पौरसीमन्तिनीनाम्।
   रक्ता शोकस्तवक ललितैबलिभानोर्म पूरवैर्ना–
   लक्ष्यन्ते रजनिविगमे पौरमार्गेषुयत्र।।
   प. दू., पृ. 80, म.दू. (पू. 32)
2. वासश्चित्रं मधु नयनयोर्विभ्रमादेशदक्षं
   पुष्पोद्भेदं सह किसलयैर्भूषणानां विकल्पान्।
   लाक्षारागं चरणकमलन्यासयोग्यं च यस्या
   मेकः सूते सकलमबलामण्डनं कल्पवृक्षः।।
   वही, पृ. 13

कामिनियों द्वारा केश विन्यास करने की प्रथा का भी उल्लेख इन खण्डकाव्यों में स्थान-स्थान पर किया गया है। एक स्थान पर स्त्रियों के द्वारा धारण किए गए ऊँचे जूड़े की तुलना उस पर्वत से की गई है जो काला है और चिकने पत्थरों वाला है। वह माल्यवान पर्वत स्त्रियों के द्वारा धारण किए गए विशाल और ऊँचे जूड़े जैसा है।

मेघदूत में ऐसा कथन किया गया है कि सभी पुष्प जिन ऋतुओं में उत्पन्न होते हैं, वे कामिनियों के विविध रूप में शृङ्गार के हेतु बनते हैं। जैसे वहाँ पर यह संकेत है कि शरद ऋतु का कमल धुंधराले वालों में लगता है। केशों की गूथी हुई चोटी में बसन्त ऋतु में होने वाला कुरबक है। ग्रीष्म में शिरीष के पुष्प और वर्षा के कदम्ब के पुष्प हैं।[२]

---

1. स्निग्धश्यामं गुरुभिरुपलैः प्रर्वतं माल्यवन्तं
   पश्येरुत्तम्भितमिव पुरः केशपाशं पृथ्व्याः।
   तत्राद्यापि प्रतिकरजलैर्जराः प्रस्थभागाः
   सीतामर्तुः पृथुतरशुचः सूचयन्त्यश्रुयाताम्।।
   प. दू., पृ. 51
2. हस्ते लीलाकमलमलके बालकुन्दानुविद्धं
   नीता लोध्रप्रसवरजसा पाण्डुतामाननेश्रीः।
   चूडापाशे नवकुरबकं चारु कर्णे शिरीषं
   सीमन्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीपं बधूनाम्।।
   मे. दू. (30), पृ. 160

मेघदूत में पुष्पों का वर्णन अनेक प्रकार से आया है। इस वर्णन में जब प्रिया-विरहित यक्ष अपनी प्रिया को सन्देश भेजना चाहता है तो वह मेघ का पूजन कुटज पुष्पों द्वारा करता है। कवि कालिदास लिखते हैं कि श्रावण माह के समीप आने पर प्रिया के जीवन-धारण को चाहने वाले उस यक्ष ने मेघ के माध्यम से अपना कुशल-समाचार भेजने की इच्छा से कुटज पुष्पों के द्वारा मेघ की पूजा करके प्रसन्न होकर प्रेयपूर्ण वाक्यों द्वारा उसका स्वागत किया।[1]

इसी प्रकार से जब यक्ष मेघ को मार्ग बताता है तो वह कहता है कि जब तुम इस रास्ते पर जाओगे तो वहाँ पर भगवान् शंकर का परम पवित्र स्थान मिलेगा। वहाँ जाकर तुम उनके द्वारा गजचर्म के धारण करने की इच्छा पूरी करना। वे अपने ताण्डव के समय जपा पुष्प के तेज को धारण करते हैं।[2]

---

1. प्रत्यासन्ने नमसि दयिता जीवितालम्बनार्थो
   जीमूतेन स्वकुशलमयी हारिमष्यन् प्रवृत्तिम्।
   स प्रत्यगै कुटजकुसुमैः कल्पितार्घाय तस्मै
   प्रीतः प्रीतिप्रमुखवचनं स्वागतं ब्याजहार।।
   मे.दू. (पू.मे.), पृ. 13
2. पश्चादुच्चैर्भुजतरुवनं मण्डलेनाभिलीनः
   सान्ध्यं तेजः प्रतिनवजपापुष्परक्तं दधानः।
   नृत्यारम्भे हर पशुपते रार्दनामाजिनेच्छां
   शान्तोद्वेगस्तिमितनयनं दृष्टभक्तिर्भवान्याः।।
   वही, पृ. 94

नेमिदूतम् में भी पुष्पों का वर्णन अनेक स्थानों पर किया गया है। वहाँ पर यह लिखा गया है कि हे नाथ! गीत के समान मनोहर कदम्बपुष्पों की सुगन्धि से उन्मत्त भ्रमरों की गुञ्जार वेणु विशेष की कर्णध्वनि की तरह मयूरों की ध्वनि तथा मयूरों के सुन्दर नृत्य वाले उस पर्वत पर तुम्हारा गमन यदि मृदंगोत्पन्न ध्वनि की तरह कर्णप्रिय हो जाए तो शिव जी का संगीत निश्चय ही सम्पूर्ण होगा।[1]

शीलदूतम् में एक स्थान पर पुष्पों का संकेत इस प्रकार से किया गया है जिस प्रकार से पुष्प मानों वृक्षों में रोमांच के रूप में प्रकाशित हो रहा है। अर्थात् वृक्ष-श्रेणियों में लगे हुए पुष्प ऐसे प्रतीत हो रहे हैं जैसे वे वृक्षों में उनकी रोमराजियाँ होवें।[2]

---

1. नीपामोदोन्मदमधुकरीगुञ्जनं गीतरम्यं
   केका वेणु क्वणितमधुराबर्हिणां चारुनृत्यम्।
   श्रोत्रानन्दी मुरजनिनदस्त्वत्प्रयागे यदिस्या
   त्संगीतार्थो न पशुपतेस्तत्र भावी समग्रः।।
   ने. दू., पृ. 66
2. लोलच्छाखाशयतिविलसितैस्त्वामिवाकार यन्ती
   भृंगालरैरिव तव पथः साम्प्रतं वारयानी
   वृक्षालीयं कुसुम पुलकं दर्शयन्तीव पश्य।
   स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु।।

(ग) नारीशरीरावयव :-

मुख, नेत्र, भ्रू, ओष्ठ, कटि, आदि

नारी और उसका वियोग तथा पति की ओर पत्नी की मिलन की आकांक्षा ही इन खण्डकाव्यों का विषय है। इसलिए यह स्वाभाविक है कि इनमें नारियों के विविध अंगों का वर्णन किया जाए। पवनदूत में नारी के भयभीत मुख की शोभा का वर्णन किया गया है। वहाँ पर यह कहा गया है कि हे पवन! मदमाते गन्ध हाथियों के गर्जन के डर से चंचल नयनों वाले कुछ-कुछ चतुर कामिनियों के मुखों पर दृष्टिपात करते हुए विन्ध्यपर्वत की तलहटी में पहुँच जाना। वहाँ कुञ्जों में रमण करती हुई देवस्त्रियों के क्रीडाक्षण में निकलते हुए निश्वासों से कान्तिरहित लता के नवपल्लवन के समान शोभाधारण करती हैं। इन सबका अवलोकन करते हुए विन्ध्यपर्वत की उपत्यका में प्रवेश करना।[१]

दूसरे एक स्थान पर युवती के उस चंचल मुख का कथन है जो लज्जावश हो गया है। स्वप्न में वह अपने ही शरीर का आलिंगन करती है और जगकर लज्जित हो जाती है।[२]

---

1. कुञ्जक्रीडत् त्रिदशतरूणौ केलिनिश्विासवातै
   म्लायद्वल्ली किशलयरूचो निर्विशेर्विन्ध्यपादान्।
   पश्यन् वक्त्राण्यनतिचतुर व्याद्य सीमन्तिनीनाम्
   माद्यद्गन्धद्विरद्सरित त्रासलोलेक्षणानि।।

   प. दू., पृ. 57

2. शान्तप्राये रजनिसमये किञ्चदामीलिताक्षी
   प्राप्य स्वप्ने कथमपि पुरस्त्वामति प्रौढ़रागा।
   श्लिष्यन्ती स्वां तनुमनुपहं विप्रबुद्धाथबाला
   लज्जालोलं बलयलि मुखं सा सखीनां मुखेषु।।

   ही, पृ. 116

नेत्र और भ्रू संचालन तो युवतियों के सौन्दर्य का शोभाकर भाव होता है। मेघूदत में एक स्थान पर कालिदास अपनी नायिका के अंग-प्रत्यङ्ग का वर्णन करता है जिसमें वह लिखता है कि यक्ष की प्रेयसी भयभीत मृगी के समान चंचल नेत्रों वाली है।[1] यहाँ पर याक्षिणी के नेत्रों का वर्णन करते हुए जहाँ उसकी सुन्दरता का कथन किया गया है वहीं पर उसके नेत्रों को भयभीत मृगी के नेत्रों के समान बताया गया है। दूसरे एक स्थान पर युवती के जिन नेत्रों का कथन किया गया है वे नेत्र वियोग के दुःख से निसृत आसुओं से भरे हुए हैं।[2]

एक स्थान पर रमणी के कटाक्षों का वर्णन किया गया है जिसमें यह वर्णन आया है कि द्वारिका के वेत लता की प्रकार पर्यन्त समुद्र की तरंग युक्त मनोहर जलधारा रमणी कटाक्षयुक्त मुख की तरह सुशोभित है।[3]

---

1. तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्वाधरोष्ठी
   मध्ये क्षामा चकितहरिणी प्रेक्षणा निम्ननाभिः।
   श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाम्यां
   या तत्र स्याद्युवतिविषये सृष्टिराद्येव धातुः।।
   मे. दू. (30), पृ. 21
2. वही, पृ. 29
3. तन्नः प्राणानव तव मतो जीवरक्षैव धर्मो
   वासार्थं वः सुरविरचितां तां पुरीमेहि यस्याः।
   वप्रप्रान्ते स्फुरति जलधेर्हारिवेलारमण्याः
   सभ्रूभंगं मुखमिव पयो वेत्रवत्याश्चलोर्मि।
   जै. मु., पृ. 30

शीलदूतम् में ठीक उसी प्रकार का वर्णन किया गया है जैसा वर्णन मेघदूतम् में कवि कालिदास ने किया है। कालिदास ने मेघदूतम् में युवतियों के चंचल कटाक्षों का संकेत किया है, उसी तरह से शीलदूतम् के रचनाकार ने भी युवतियों के चंचल कटाक्षों का वर्णन किया है।[1]

युवतियों के भुजलताओं का सुन्दरतापूर्वक कथन जहाँ एक ओर है वही उनके ओष्ठों का सौन्दर्य वर्णन भी विशेष रूप से किया गया है। कालिदास जब यक्षिणी के ओष्ठों का वर्णन करते हैं तब वे उनकी तुलना बिम्ब फलों के सदृश करते हैं।[2]

प्रिय के वियोग में प्रिया के नेत्रों से निकला हुआ अश्रु बिन्दु उसके जिन ओष्ठों पर आता है, वे ओठ उसी प्रकार के हैं जैसे पके हुए बिम्ब के फल होते हैं।[3]

---

1. स्वामिन्नस्मिन् स्मरगृहसमे कानने तत्वकीने
   कामक्रीड़ा विदधति समं निर्जराः सुन्दरीभिः।
   स्नेहस्निग्धैस्त्वमिह रतिदेर्वीक्षितोऽपि प्रियाणां
   लोलापांगैर्यदि न रमसे लोचनैर्वऽिचतोऽसि।।

   शी.दू. 29, प. दू. पृ. 85, वही. पृ. 91, 96

2. तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी।

   मे. दू. (30) 21

3. आदौ यातो नयनपदवीं स्तम्भयन् पक्ष्ममालां
   चुम्बन् गण्डस्थलभुवमथो पीतबिम्बाधरौष्ठः।
   कुर्वन् कण्ठग्रहमपि कुचोत्संगशय्याशयान
   स्तस्या वाष्पः किमिव न खलु त्वद् वियोगे करोति।।

   प. दू. पृ. 74

सभी रमणियाँ अपने सभी अंगों से रमणीय होती हैं किन्तु इनके कुछ अंग ऐसे होते हैं जो विशेष रूप से रमणीय कहे जाते हैं। ऐसे अंगों में रमणी के कपोलों का वर्णन भी इन खण्डकाव्यों में किया गया है। पवनदूतम् में अनेक स्थलों पर रमणी के कपोलों का वर्णन है और उन कपोलों की सुन्दरता का कथन किया गया है। पवनदूतम् में एक स्थान पर किसी रमणी के ऐसे कपालों का वर्णन है जो चन्दन मिश्रित जल से धुले हैं और अपनी चिकनाई से रमणीय हैं।[१]

एक दूसरे स्थान पर कपोल मण्डल का ऐसा वर्णन किया गया है जिसमें यह वर्णन है कि विरह वेदना से व्यथित युवती के अश्रु कपोलमण्डल पर गिरते तो अवश्य हैं किन्तु वह उन्हें हाथों से रोक लेती है।[२]

---

1. मन्ये मोक्षः कठिनसुरतामासलब्धस्य तूर्णं
   दुष्प्रापस्ते पवन! भविता चोलसीमन्तिनीभ्यः।
   के वा तामसालकरचनालीननीली सनाथे
   गण्डाभोगेमलयपजपयः पिच्छिले न स्खलन्ति।।
   प. दू., प. 46
2. तस्या राजनन्नुभवमना साद्यहस्तावरोधाद्
   गण्डाभोगे नयनसलिलं स्रोतसा क्षालितोऽपि।
   प्रत्यासन्नः स्तनपरिसरे चेतसा त्वां वहन्त्याः
   प्रालेयांशुर्नृपति ककुदच्छत्रभङ्गी विभर्ति।।
   वही, पृ. 122

जिस प्रकार से युवती के अन्य अंगों की चर्चा है, उसी तरह से कटि अर्थात् कमर की चर्चा भी इन खण्डकाव्यों में देखने को मिलती है। मेघदूतकार अपनी मेघदूत की नायिका की पतली कमर की चर्चा करते हैं और लिखते हैं कि यक्षिणी पतली कमर वाली नायिका है।[1]

पवनदूतकार जब अपनी नायिका का वर्णन करता है तो वह लिखता है कि उसकी तरुण युवती को विधाता ने इतना अधिक कृशकाया बनाया है कि वह ठीक से पकड़ी भी नहीं जा सकती है। वे वर्णन करते हुए लिखते हैं कि हे राजन! ऐसा ज्ञात होता है कि मुट्ठी में पकड़ने योग्य किसी प्रकार से मध्य भाग को बनाते समय विधाता ने उस तरुणी को मदन के धनुष के लिए बनाया था। कष्ट है कि वियोग जन्यपीड़ा के कारण अत्यधिक क्षीण तनु को धारण करती हुई इस समय वह सुन्दरी प्रत्यंचा की लता मात्र हो गई है।[2]

---

1. में. दू. (30) 21
2. मुष्टिग्राहयं किमपि विधिना कुर्वता मध्यभागं
   मन्ये बाला कुसुमधनुषो निर्मिता कार्मुकाय।
   राजन्नुच्चैर्विरहजनितक्षामभावं वहन्ती
   जाता सम्प्रत्यहह सुतनुः सा च मौर्वी लतेव।।
   प. दू., पृ. 105

नेमिदूतम् में जब कटि बन्ध की चर्चा की जाती है तो यह वर्णन किया गया है कि स्त्रियाँ अपना कामानुराग अन्य अंगों के साथ-साथ कटिबन्ध के माध्यम से भी प्रकट करती हैं।[1]

एक वर्णन पवनदूतम् में इस प्रकार का आया है जिसमें यह कहा गया है कि युवतियाँ जब मेघ का गर्जन सुनती हैं तो वे भयभीत होकर अपनी कोमल भुजलताएँ अपने प्रिय जनों के गले में डाल देती हैं और इस प्रकार से उनके प्रियजन आकस्मिक रूप से ही अपनी प्रियाओं के आलिंगन का सुख प्राप्त कर लेते हैं।[2] इस प्रकार से जो वर्णन किया गया उसमें जहाँ एक ओर युवती की भुजलताओं का वर्णन है, वहीं दूसरी ओर आकस्मिक रूप से प्रिय द्वारा प्राप्त आलिंगन का भी कथन हैं।

---

1. तस्मिनमन्नु धन्मनसिजरयाः प्रांशुशाखावनाम्
   व्याजादाविःकृतकुचवलीनाभिकाञ्जीकलायाः।
   संधास्यन्ते त्वयि मृगदृशस्ता विचित्रान् विलासान्
   स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु।।

   ने. दू., पृ. 34

2. स्वेच्छारम्यं विरह विहगव्याकुलो तुङ्गवृक्षे
   विन्ध्योत्सङ्ग प्रणयिनि वने मानवोत्यत्रोपि।
   सञ्जायन्ते रहसि कारिणां, क्रूरमाकर्ण्य शब्दं
   भर्तुः कण्ठे प्रणिहितभुजावल्लयो भिल्लयोषा।।

   प. दू., पृ. 59

कोकिल का स्वर मधुर होता है। इस को सुनकर कोई भी ऐसा नहीं है जिसे आनन्द की अनुभूति न होती है होवे। किन्तु पवनदूत की नायिका अपने नायक के वियोग में इस तरह से व्यथित है कि उसे कोयल का मधुर स्वर भी अपने कानों में प्रिय नहीं लगता है।[1]

नेमिदूतम् में जब मेघ के गर्जन का कथन किया गया है तो वहाँ पर यह वर्णन आया है कि मेघ का गर्जन कर्ण प्रिय हो सकता है। जब सुनने वाले का चित्त प्रसन्न होवे। नेमिदूतम् में मेघ से यही कहा गया है कि जब तुम्हारा गर्जन कर्णप्रिय होगा तो शिव का संगीत भी निश्चित रूप से मधुर हो जाएगा।[2]

---

1. लीलोद्याने परभृतवधू पञ्चमैः पीयमाना
   ताम्यन्मूर्तिमलयमरूता केलिवातायनेषु।
   सा नैकत्र क्वचिदपि पदं कातराक्षी विधत्ते
   मत्सत्यं न त्रिभुवनमपि प्रीयते दुःरिवतानामे।।
   प. दू., पृ. 133
2. नीयामोदोन्मदमधुकरीगुंजनं गीतरम्यं
   केका वेणु क्वणितमधुरावर्हिणां चारुनृत्यम्।
   श्रोतानन्दी मुरज निनदस्त्वत्प्रयाणे यदिस्या
   त्संगीतार्थो ननु पशुपतेस्तत्र भावी समग्रः।।
   ने. दू., पृ. 66

युवतियों के पगों का वर्णन भी इन खण्डकाव्यों में स्थान-स्थान पर किया गया है। मेघदूतम् में जब अलकानगरी का वर्णन किया गया है तो वहाँ पर यह कहा गया है कि उस अलकानगरी में कल्पवृक्ष एक ऐसा वृक्ष है, जो सभी स्त्रियों के सजने के लिए सभी प्रकार के आभूषण प्रदान करता है। स्त्रियों के पद कमल के सदृश होते हैं इसलिए वह कल्पवृक्ष उन चरणों में लगाने योग्य महावर उत्पन्न करता है।[१]

नेमिदूतम् में द्वारिका नगरी का वर्णन करते हुए यह लिखा गया है कि उस नगरी में अभिसारिकाएँ जब अपने प्रियों से मिलने जाती हैं तो उनके कम्पन्न से उनके केशपाश से पुष्प वहाँ की बीचियों में गिरे हुए होते हैं। चन्द्रकान्त मणि से बने फर्श पर महारवर से युक्त चरणों के निशान दिखाई देते हैं।[२]

---

1. वासश्चित्रं मधु नयनयोर्विभ्रमादेशदक्षं
   पुष्पोद्भेदं सह किसलयैर्भूषणानां विकल्पान्।
   लाक्षारागं चरणकमलन्यासयोग्यं च यस्या
   मेकः सूते सकलमबलामण्डनं कल्पवृक्षः।।

   मे. दू., पृ. 186
2. एणांकाश्मावनिषु शिशिरे कुंकुमाद्रैः पदाङ्कै
   शीतोत्कम्पाद्गतिविगलितैबलिकैः केशपाशात्।
   भ्रष्टैः पीनस्तनपरिसराद्रोध्रमाल्यैश्च यस्यां
   नैशो मार्गः सवितुरुदये सूच्यते कामिनीनाम्।।

   ने. दू., पृ.प 85

(घ) पुरूष शरीरावयव- चरण, नेत्र, वक्ष, उरू, कर-आदि :-

जिस प्रकार से स्त्री के अंग प्रत्यंग का वर्णन इन खण्डकाव्यों में किया गया है, वैसा वर्णन पुरुष के शरीरावयवों का नहीं किया गया है। फिर भी कहीं-कहीं पुरुष के शरीर के अवयवों का वर्णन देखने को मिल जाता है। एक स्थान पर यह वर्णन आया है कि जब पति-पत्नी का आपस में प्रेम कलह होता था तो पत्नी के द्वारा चरण प्रहार किए जाने पर पति को रोमाञ्च हो जाता था। एक दूसरा वर्णन यह है कि प्रिया पति के चरणों की कोमलता का स्मरण करती है और यह कहती है कि आपने कठोर भूमि पर पर्याप्त मात्रा में विचरण किया है, इसलिए आपका शरीर क्लान्त हो गया है। यहाँ पर कामिनियों की भाँति यद्यपि पुरुष के चरणों की शोभा का कथन तो नहीं है तथापि पति के चरण कोमल हैं, इसका संकेत अवश्य किया गया है।

---

1. खिन्नोऽसि त्वं चिरविचरणाद् दृश्यतेऽनीहशस्ते
   देहस्तन्नो निजपरिजनेनाऽमुना जल्पसि त्वम्।
   हर्म्येष्वेषु प्रिय! निवसनात् सज्जयास्मिंस्तनुं स्वां
   नीत्वा खेदं ललितवनितापादरागांकितेषु।।
   शी. दू., पृ. 20

एक स्थान पर भगवान् विष्णु के चरण कमलों का कथन भी किया गया है जिसमें यह कहा गया है कि एक क्रीडा पर्वत है जिस पर देवगण अपनी स्त्रियों के साथ बिहार करते हैं। वह अंजन गिरि पर्वत के समान तिरछा होकर फैला हुआ है और आकाश तक फैला हुआ है। वह ऐसा प्रतीत होता है जैसे बलि को नियन्त्रित करने के लिए उठाए गए विष्णु के श्यामल चरण के सदृश होवे।[1]

एक दूसरे उदाहरण में यह कहा गया है कि हे आश्रय देने वाले! चेतन और अचेतन ज्ञान से वंचित मैं आपको भी जिन देव के समान ज्ञान देने में दक्ष, महान् तथा राग-द्वेषादि मनोभावों का विजेता मानता हूँ। अतः संसार रूपी कर्म-रण को जीतने वाले श्री चरणों की शरण चाहता हूँ क्योंकि गुणी से निष्फल याचना भी नीच से सफल याचना की अपेक्षा अधिक श्रेयस्कर है।[2]

---

1. हित्वा स्वाद्रिं जिनपतिमहाचैत्यपूते प्रभूते
   स्त्रीभिः सार्द्धं विबुधनिचया यत्र खेलन्ति नाथ।
   तिर्याम्व्याप्यञ्जनगिरिरिवाभ्रं गतो भ्राजते यः
   श्यामः पादो बलिनियमनाऽभ्युद्यतस्येव विष्णोः।।

   शी. दू., पृ. 26
2. जाने युष्मान् निजपतिसमान् ज्ञानदानप्रवीणान्
   रीणोऽमुष्मादनणुभवतो भावविद्वेषिजेतॄन्।
   याचे तस्माच्चरणशरणं वः शरण्याः रणध्नं
   याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा।।

   वही, पृ. 13

मेघदूत में एक स्थान पर किए गए वर्णन से यह देखने को मिलता है कि प्रिया और प्रिया की काम के अवसर पर प्रिय द्वारा प्रिया के शरीर में नाखूनों के प्रयोग का प्रचलन था। यही कारण है कि यक्ष जब मेघ को अपने घर भेजता है तो वह अपनी प्रिया के परिचय में कहता है कि जब तुम मेरी प्रिया के समीप जाओगे उस समय मेरे नाखूनों के चिन्हों से रहित, भाग्यवश मोतियों से लड़ी वाली करधनी रहित मेरी प्रिया की उस जंघा को देखोगे जो उस समय फड़क उठेगी।[१]

प्रिय अथवा प्रिया के वियोग में मन की व्यथा का कथन तो अनेकशः मिलता है। यक्ष मेघ से कहता है कि मेरा मन इस समय अनाथ जैसा है क्योंकि वह अपनी प्रिया के वियोग में दूर रहकर अकेला है और ऐसा प्रतीत होता है जैसे वह अनाथ हो गया होवे।[२]

---

1. वामश्चास्याः कररुहपदैमुच्यमानो मदीयै
   मुक्ताजालं चिरपरिचितं त्याजितो दैवगत्या।
   सम्भोगान्ते मम समुचितो हस्तसंवाहनानां
   यास्त्यूरूः सरसकदलीस्तंभगौरश्चलत्वम्।।
   मे. दू. (30), 35
2. संक्षिप्यते क्षण इव कथं दीर्घयामा त्रियामा
   सवविस्थास्वहरपि कथं मन्द मन्दातपं स्यात्।
   इत्थं चेतश्चटुलनयने! दुर्लभप्राचर्निं मे
   गाढ़ोष्माभिः कृतमशरणं त्वद्वियोगव्यथाभिः।।
   वही. पृ. 47

एक स्थान पर इस प्रकार का वर्णन आया है जिसमें यक्ष के उन नेत्रों का वर्णन किया गया है जो आंसुओं से भरे हुए हैं और जिन अश्रु विगलित नेत्रों से वह अपनी प्रिया को देख नहीं पाते।[1]

यक्ष के वियोग के दिन ऐसे हैं जिनमें वह शारीरिक रूप से अत्यधिक दुबला हो गया है। उसका यह दुबलापन उस अवस्था में दिखाई देता है जिस अवस्था में उसके हाथ का पहना हुआ कंकण ढीला होकर गिरने लगता है। अपनी इस दुखावस्था का वर्णन करता हुआ वह मेघ को जब अलका भेजने का संदेश देता है तभी यह स्थिति सामने आती है। उसने अपने हाथ में जो स्वर्ण कंकण पहन रखा था, वह इतना अधिक ढ़ीला हो गया है कि वह हाथ से खिसककर गिर जाता है।[2]

---

1. त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैः शिलाया
   मात्मानं ते चरणपतितं यावादिच्छामि कुर्तम्।
   अस्तैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे
   क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते संगमं नौ कृतान्तः।।

   मे. दू. (30), 44
2. तस्मिन्नद्रौ कतिचिदबला विप्रयुक्तः स कामी
   नीत्वा मासान् कनकवलय भ्रंशरिक्तः प्रकोष्ठः।
   आषाढ़स्य प्रथम दिवसे मेघमाश्लिष्ट सानुं
   वप्रक्रीडा परिणतगजप्रेक्षणीयं ददर्श।।

   वही. पृ. 2

शीलदूतम् में एक नगर का वर्णन इस प्रकार से किया गया है जिस नगर के निवासी बहादुर हैं और जिनके वक्षस्थल शत्रुओं के अस्त्र-शस्त्र के प्रहारों से अधिक पुष्ट होकर शोभा दे रहे हैं। वहाँ का वर्णन करते हुए यह लिखा है कि वहाँ गंगा के समान उज्ज्वल, चन्द्रमा के रथ के घोड़ो की आकृति वाले अश्व हैं, पर्वत के शिखर के समान ऊँचे, मतवाले और सुन्दर चाल चलने वाले हाथी हैं। वहाँ की समस्त युवतियाँ चंचल हैं और वहाँ के वीरों के शरीर पर अंकित तलवार के घाव सुन्दर आभूषणों की शोभा को भी तिरस्कृत करते हैं।[1]

एक स्थान पर नेमिनाथ के वक्ष स्थल का वर्णन आया है। उसमें यह कहा गया है कि श्रीकृष्ण की पत्नियों ने सरस और सुन्दर फूलों से भी नेमिनाथ के वक्षःस्थल को सुन्दर ढ़ंग से अलंकृत कर दिया था। इसलिए वे फूल ऐसे लग रहे थे जैसे काम के बाण उनका हृदय करने में समर्थ न हुए हो।[2]

---

1. गंगागौराः सितकरहयाकारचौरास्तुरंगा
   शृंगोत्तुंगा ललितगतयो दानवन्तो गजेन्द्राः।
   लीलावत्योऽखिलयुवतयो यत्र वीरावसंतसाः
   प्रत्यादिष्टाभरणरुचयशश्चन्द्रहासब्रणाङ्कैः।

   शी. दू., पृ. 28

2. काचिद् वामा जलद! पिदधे चन्दनस्यन्दसिक्तैः
   पंक्तिन्यस्तैः सरसकुसुमैर्दक्षमुख्यस्य वक्षः।
   कामोन्मुक्तैरिव जगदुरो विध्यमानैरखण्डैः
   काण्डैर्भेत्तुं तदलमनलंभूष्णुभावाद्बहिः स्थैः।।

   जै. मे., पृ. 47

पुरुष शरीर में हाथों का अपना महत्त्व है। प्रस्तुत खण्डकाव्यों में पुरुष के अंगों के रूप में हाथों का महत्त्व वर्णित किया गया है। मेघदूतम् में एक स्थान पर यह कहा गया है कि पुरुष हर स्त्री के अंगों को संदर्भित कर उसे सुख पहुँचाने वाले होते हैं।[1]

इसी प्रकार का एक चित्रण उस समय का है जब यक्ष मेघ के माध्यम से अपना सन्देश अपनी प्रिया को भेजता है। वह कहता है कि मैं स्वप्न में तुम्हें देखने का बहुत प्रयास करता हूँ किन्तु जब भी तुम्हारा आलिंगन करने के लिए भुजाएँ फैलाता हूँ तो सफलता प्राप्त नहीं हो पाती है। यह एक ऐसा काठणिक दृश्य है, जो किसी के भी नेत्रों में आँसू भर लाने के लिए पर्याप्त है।[2]

---

1. वामश्चास्याः कररुहयदैर्मुच्यमानो मदीयै
   मुक्ताजालं चिरपरिचितं त्याजितो दैवगत्या।
   सम्भोगान्ते मम समुचितो हस्तसंवाहनानां
   यास्त्यूरुः सरसकदलीस्तम्भ गौरश्चलत्वम्।।
   मे. दू. (30) 35
2. मामाकाशप्रणिहिभुजं निर्दयाश्लेषहेतो
   लब्धायास्ते कथमपि मया स्वप्नसंदर्शनेषु।
   पश्यन्तीनां न खलु बहुशो न स्थलीदेवतानां
   मुक्तास्थूलास्तरुकिसलयेष्वश्रुलेशाः पतन्ति।।
   वही, पृ. 45

रावण की भुजाओं का जहाँ वर्णन किया गया है, वहाँ पर उसकी बलवान भुजाएँ इस प्रकार की है, जो अपौरुषेय कार्य कर सकती हैं। मेघदूतम् के एक स्थल में इस प्रकार का कथन आया है जिसमें यह कहा गया है कि रावण की भुजाओं ने एक बार उस कैलाश पर्वत की चोटियों की संधि को ढ़ीला कर दिया था, जो अपनी धवलिमा से ऐसा प्रतीत हो रहा है जैसे वह भगवान् शंकर के प्रतिदिन के अट्टहास की राशि हो।[१]

पुरुष के नेत्रों का कथन अनेकशः सन्दर्भित खण्डकाव्यों में हुआ है। यक्ष जब मेघ से अपनी व्यथा का वर्णन करता है तब वह कहता है कि जब कभी मैं तुम्हारा चित्त पृथिवी पर अंकित कर उसे देखना चाहता हूँ तभी आंसुओं से मेरी आंखे भर आती हैं।[२]

---

1. गत्वा चोर्यं दशमुखभुजोच्छ्वासित प्रस्थसन्धे
   कैलासस्य त्रिदशवनितादर्पणस्यातिथिः स्याः।
   शृङ्गच्छायैः कुमुदविशदैर्यो वितत्य स्थितः खं
   राशीभूतः प्रतिदिनमिव त्र्यम्बकस्यदृहासः।।
   मे. दू. (पू.), पृ. 145
2. त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैः शिलाया
   मात्मानं ते चरणपतितं यावदिच्छामि कर्तुम्।
   अस्त्रैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे
   क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते संगंम नौ कृतान्तः।।
   वही, पृ. 44

नेमिदूतम् में यह वर्णन है कि नेत्र विधि द्वारा दिए गए ऐसे अंग हैं, जो प्रकृति की रमणीयता का दर्शन कराते हैं। इसमें भी मेघ द्वारा भद्रानामक नदी के देखने का वर्णन है जो भद्रा अपनी शुभ्रतरंगों से दशपुर के राजा के यश का विस्तार करती है।[1]

एक दूसरे खण्डकाव्य में नेत्रों के उस भाव को व्यक्त किया गया है जिसे कटाक्ष कहा जाता है और जो स्त्रियों का एक प्रकार से रत्यामन्त्रण होता है। वहाँ पर यह भी कहा गया है कि स्त्रियों को जो दूसरे प्रकार के शृंगार साधन प्राप्त होते हैं, वे धन के माध्यम से प्राप्त हो जाते हैं किन्तु ये जो प्राकृतिक हाव-भाव हैं, वे सभी उन्हें प्रकृति से ही प्राप्त होते हैं और ये सभी ऐसे होते हैं, जो अत्यधिक रमणीय तथा आकर्षक कहे जाते हैं।[2]

---

1. उत्कल्लोला विपुलपुलिनाग्रेऽथमद्राभिधाना
   सा ते सिन्धुर्नयनविषयं यास्याति प्रस्थितस्य
   वातोद्धूतैर्हसति सलिलैर्या शशांकाशुगौरेः
   स्रोतो मूर्त्या भुवि परिणतां रन्तिदेवस्य कीर्तिम्।।

   ने. दू., पृ. 54

2. वाचः श्रोतामृततमनुगत भ्रूविलासाः कटाक्षाः
   रूपं हस्तोच्चयसमुचितं स्गिन्धमुग्धाश्च हत्वाः।
   यातं लीलांचितमकृतकं यत्र नेपथ्यमेतत्
   पौरस्त्रीणां द्रविणसुलभा प्रक्रिया भूषणञ्च।।

   प. दू., पृ. 90

जैन मेघदूतम् में जिस प्रकार से नेमिनाथ के शरीर के अंगों का वर्णन किया गया है, वह अद्भुत और अपूर्व है। वहाँ पर यह वर्णन आया है कि नेमि के सुन्दर बदन से पूर्णचन्द्र सदृशता प्राप्त करता है। नेमि के नेत्रों से कमल दल सदृशता प्राप्त करता है। नेमि के मुख परिमल से पुष्प सदृशता प्राप्त करता है। नेमि के शरीर से रक्त सदृशता प्राप्त करते हैं। भगवान् नेमि के उरुओं से कदली स्तम्भ की सदृशता प्राप्त होती है। गंगा का तट उनकी कटि की सदृश शोभा को प्राप्त कराता है। तोरण द्वारों से ऐसा प्रतीत होता है मानों वे भगवान् नेमिनाथ के वक्षस्थल होवें। कल्पवृक्ष की शाखा उनकी भुजाओं की सदृशता प्राप्त करते हैं और उनकी भुजाएँ किसलयों की भाँति सुन्दर दिखते हैं। इस प्रकार का वर्णन जहाँ काव्यकार अपने नायक के वैशिष्ट्य को प्रदर्शित करने के लिए करता है, वहीं इससे उनका सौन्दर्य भी ध्वनित होता है।[1]

---

1. पदमं पद्भ्यां सरलकदलीकाण्ड ऊर्वोर्युगेन
स्वर्वाहिन्याः पुलिनममलं नेमिनः श्रोणिनैव।
शोणो नाभ्याञ्चति सदृशतां गोपुरं वक्षसा च।
द्युद्रो शाखानवकिशलयो बाहुपाणिद्वयेन।।
– – – –
वर्ण्येऽर्थोद्ये क्वचिदुपमितं दद्युरेवं बुधाश्चे
देतस्याङ्गैर्भवति उपमाधिक्यदोषस्तथापि।। जै.मे., पृ. 16

संस्कृत साहित्य में इन खण्डकाव्यों के अतिरिक्त अन्य गीतिकाव्य भी हैं, तथापि वे उतने महत्त्वपूर्ण नहीं है जितना महत्त्व मेघदूतम् को मिला है और जितना अधिक सार्थक वर्णन जैन गीतिकाव्यों में किया गया है।

मेघदूतम् का कथानक जिस रूप में लिया गया है और इसमें जैसा वर्णन नायक तथा नायिका के सौन्दर्य के सन्दर्भ में किया गया है, उसी प्रकार का वर्णन लगभग अन्य गीतिकाव्यों में भी किया गया है। नेमिदूतम् और शीलदूतम् की शैली और उनका वर्णन स्वरूप लगभग वैसा ही है जैसा मेघदूतम् में प्राप्त होता है। इसलिए जिन सौन्दर्य साधनों का सरस वर्णन मेघदूतम् में जैसा है, वैसा ही वर्णन लगभग शीलदूतम् और नेमिदूतम् में भी प्राप्त होता है। नेमिदूतम् की वर्णन शैली तो ऐसी है जैसे मेघदूतम् के कथ्य को ही दुहरा कर रख दिया गया हो। इसलिए चाहे नायक और नायिका के शरीर के अंगों का वर्णन हो अथवा प्रकृति के सौन्दर्य साधनों का रूपक हो, इन दोनों काव्यों में समान रूप से सुन्दरता दिखाई देती है। जहाँ तक जैन मेघदूतम् का प्रश्न है तो इसमें भी जैन भावों के वर्णन के अतिरिक्त जहाँ पर इसके नायक और नायिका के सौन्दर्य साधनों का वर्णन है, वह मेघदूतम् से ही मिलता-जुलता है और शरीरांगों के वर्णन की विशेषता समान रूप से परिलक्षित होती है। इस रूप में हम यह देख सकते हैं कि इन सभी सन्दर्भित गीतिकाव्यों का सौन्दर्य वर्णन लगभग समान है, आकर्षक है और इस प्रकार का है जिससे उसका रसास्वाद सुख से हो सकता है।

चतुर्थ अध्याय

(तुलनात्मक साहित्यिक विवेचन)

चतुर्थ अध्याय

(तुलनात्मक साहित्यिक विवेचन)

(क) पवनदूतम् का चरित्र-चित्रण-

<u>नायकः लक्ष्मण सेन</u> :-

पवनदूतम् में विजयपुर के राजा का वर्णन किया गया है। वह एक ऐसा राजा है जो सभी प्रकार से सम्पन्न है और एक ऐसे राजमहल में निवास करता है जहाँ सभी प्रकार की सुविधा प्राप्त है। राजा लक्ष्मणसेन इतना अधिक सुन्दर है जैसे कामदेव होवे। उसकी वीरता इतनी अधिक है कि उसकी प्रचण्ड चन्द्रहास निरन्तर युद्ध में वीरता प्रदर्शन करती रहती है। राजा की सेना सुगठित है, कुशल है और शत्रुओं के समक्ष खड़ी होने में समर्थ है। उसका साहस इतना अधिक प्रशंसनीय है कि उसके शौर्य को उस नगर की युवतियाँ भय तथा कौतूहल से देखती हैं। यह देखकर प्रशंसा के भाव से कहती हैं कि यही राजा सेन वंशीय राजा है जो साहस और सौन्दर्य का प्रतीक है।[१]

---

1. भुग्नग्रीवं भुजविसलतासक्तवक्त्राम्बुजाभिः
   सोऽयंसेनान्वयनृप इति त्रासकौतूहलाभ्याम्।
   विष्वक् पीतः कुवलयदलश्रेणिदीर्घैः कटाक्षैः
   पौरस्त्रीभिः सपदि नगरी विद्रवे विद्विषां यः।।

   पू. दू., पृ. 96

पवनदूत में राजा की वीरता और शौर्य का कथन प्रायः अतिशयोक्ति ढ़ंग से किया गया है। वह इतना अधिक बहादुर है कि उसके आक्रमण से जो शत्रु राजा समाप्त हो जाते हैं, वे अपने पीछे अपनी कोमल रानियों को छोड़ जाते हैं। तब यह प्रश्न होता है कि वे रानियाँ भला असहाय होकर कैसे वन में भ्रमण करती रहेंगी?

किन्तु राजा के इसी रूप का कथन करते हुए उसे ऐसे राजा के रूप में चित्रित किया गया है जो प्रजा के हित के लिए निरन्तर सचेष्ट रहता है। इसलिए पवन को दूत के रूप में भेजते हुए यह कहा गया है कि वह राजा को तब व्यवधान न दे जब राजा प्रजा का हित साधन करने में व्यस्त होवे। अर्थात् जब राजा अपने राज्य की प्रजा का हित चिन्तन करने में व्यस्त होवे और यह विचार कर रहा होवे कि उसके राज्य की प्रजा सुखी रहे, तब पवन को चाहिए कि राजा को किसी भी प्रकार पीड़ित न करे। इससे राजा के प्रजा के हित-चिन्तक का स्वरूप प्रकट होता है।[१]

---

1. तस्मिन् काले क्वचिदपि स चेद् वासस्य त्रिभागं
   राजा शक्तो गमयति रहश्चिन्तयन्तयन्नन्तरायान्।
   सन्देशो मे न पवन तदा किञ्चिदावेदनीयः
   कार्योन्तप्ते मनसि लभते नावकाशं विलासः।।

   प. दू., पृ. 99

राजा लक्ष्मणसेन जहाँ एक ओर बहादुर है और अपनी वीरता से सभी ओर यशस्वी भाव से अवस्थित है, वहीं दूसरी ओर वह इस प्रकार के स्वभाव वाला भी है, जिस स्वभाव से उसकी रसिकता प्रकट होती है।[1]

यक्ष हेममाली :-

शास्त्र की परिभाषा के अनुसार मेघदूतम् खण्डकाव्य का नायक यक्ष धीरललित नायक है। वह युवावस्था में ही अपने एक सामान्य से अकार्य से अपने स्वामी को असन्तुष्ट कर देता है और निष्कासन का दण्ड भोगता है। वह सरसभाव वाला है, और उसका अपनी पत्नी के प्रति अत्यधिक लगाव है। वह ललित भावों से भरा है, तथा गन्धर्वयोनि में होने के कारण कामचारी है। वह स्वयम् भी कहीं जा सकता है इसलिए अपनी प्रिया को संदेश देकर जब वह मेघ को अलका भेजता है और उसे अलका का मार्ग बताता है, तब उसका मार्ग का ज्ञान एकदम सटीक दिखता है। वह जीवन के प्रति यथार्थ दृष्टि का अनुयायी है।[2]

---

1. आसादयातः कमपि समयं सौम्य वक्तुं विविक्ते
   देवं नीचैर्विनयचतुरः कामिनं प्रक्रमेथाः।
   अप्यनेषु प्रणयिभिरभिव्यञ्जितः कार्यभागः
   सिद्धिं गन्तुं प्रभरवसरे किं पुनः पार्थिवेषु।।
   प.दू., पृ. 100
2. कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा
   नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण।।
   मे. (30) 48

यक्ष के विषय में यह कहा जा सकता है कि वह एक व्यवहारिक व्यक्ति है और उसे इसका ज्ञान है कि किसके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए। इसलिए जब वह अपनी पत्नी के विरह से व्यथित हो जाता है तो मेघ को अपना सन्देश देकर उसके पास भेजता है। वह पहले मेघ को अलका जाने का रास्ता बताता है और बाद में यह विचार कर कि रास्ता लम्बा होने के कारण मेघ में कहीं अरसिकता न आ जावे, इसलिए उसे बीच-बीच के रमणीय स्थलों का परिचय भी देता जाता है। अन्त में वह मेघ को अपना भाई मान लेता है और उसे प्रसन्न करने के लिए साथ ही सज्जनों की सज्जनता का कथन करने के लिए कहता है कि सज्जनों के प्रति अभिलषित प्रयोजन का सम्पादन ही उनका प्रत्युत्तर होता है।[१]

---

1. कच्चित् सौम्य! व्यवसितमिदं बन्धुकृत्यं त्वया मे
   प्रत्यादेशान्न खलु भवतो धीरतां कल्पयामि।
   निःशब्दोऽपि प्रदिशसि जलं याचितश्चातकेभ्यः
   प्रत्युक्तं हि प्रणयिषु सतामीप्सितार्थक्रियैव।।
   मे. दू., (30) 53

नेमिनाथ :-

जैन मेघदूतम् के नायक श्री नेमिनाथ का चरित्र-चित्रण द्विविध भावों का भण्डार है। एक ओर इसमें शृंगार की अपूर्वता है तो दूसरी ओर विरक्ति मूलक शान्त की अद्भुत ऊर्जा भी है। समुद्र विजय ने अपने पुत्र श्री नेमि का विवाह महाराज अग्रसेन की रूपसी विदुषी पुत्री राजुलमती अथवा राजीमती के साथ करना निश्चित किया। वे अपने पूरे वैभव और विलास के साथ अपने पुत्र की बारात लेकर जब अग्रसेन नगरी पहुँचे तो बलि देने के लिए वहाँ पर जो पशु एकत्रित किए गए थे, उनकी करुण दशा का अनुमान करके श्री नेमिनाथ अत्यधिक व्याकुल हो उठे। उन्होंने यह विचार किया कि मेरे जीवन की इस मंगल की बेला पर ऐसा अमंगल आचरण भला मंगल का सृजन कैसे कर सकता है। इसलिए अब मैं पशुओं की भाँति बँधे हुए जीवों को संसार से मुक्त करने पर प्रयन्त करुँगा।[1]

---

1. नर्तेऽर्तीनां नियतमवरावावरीमां तपस्यां
   यस्योदर्कः सततसुखकृत्कृत्यमर्ध्यं सतां तत्।
   दामत्कर्मप्रसितभवनो मोचयिष्ये चरीन् वा
   नेमिः प्रत्यादिशदिति हरिं भूरि निर्बन्धयन्तम्।।

   जै. मे., पृ. 95

जब नेमिनाथ ने यह निर्णय कर लिया और तपस्या करने के लिए वन में चले गए तो उनकी मानी पत्नी राजीमती अत्यन्त पीड़ित हुई। कवि जहाँ एक ओर नेमि के त्याग रूप का वर्णन करते हैं, वहीं दूसरी ओर उनके सांसारिक स्वरूप का कथन भी करते हैं, जिसमें उनकी जल क्रीड़ा का वर्णन किया गया है। जब वे कृष्ण पत्नियों के साथ जल-क्रीड़ा कर रहे थे, तब उन युवतियों में से किसी ने चन्दन के नए-नए लेपों से श्री नेमि के सुन्दर शरीर पर बिन्दुन्यास पूर्वक पत्रावल्ली की रचना की।[१] फिर उनके सिर पर फूलों के मुकुट को रखकर दिन में ही चन्द्र एवं ताराओं से युक्त आकाशवत भासित कराने लगीं। इसी के साथ ही श्री नेमि के दान स्वभाव, करुणा के स्वभाव आदि का वर्णन कर उनके चरित्र के उज्ज्वल पक्ष को उकेरा गया है।[२]

---

1. श्री खण्डस्य द्रवनवलवैर्नर्मकर्माणि बिन्दु
   विन्दून्यासं वपुषि विमले पत्रवल्लीर्लिलेख।
   पौष्यापीडं व्यधित च परा वासरे तारतारा
   सारं गर्भस्थितशशधरं व्योम सन्दर्शयन्ती।।

   जै. मे., पृ. 46
2. तेषामेव प्ररुदितवतां किंकरन्नाकिचक्रो
   पोपानीतं विदधदभिमतोऽप्यर्थिसादर्थसार्थम्।
   प्रातः प्रातः स्वभवनगतो डिण्डिमोद्घोषपूर्वं
   प्राक्रंस्तासौ वितरणमथो वार्षिकं हर्षधाम्।।

   वही, पृ. 96

तुलना :-

सन्दर्भित खण्डकाव्यों में मेघदूतम् और जैन मेघदूतम् दोनों ही काव्यों के नायकों में पर्याप्त भिन्नता प्राप्त होती है। मेघदूत का नायक विशेष रूप से देव योनि का है क्योंकि देवताओं के एक भेद मे यक्ष भी एक भेद होता है और मेघदूत का यक्ष इसलिए देव योनि का है जैन मेघदूतम् में जिस नायक की कल्पना की गई है, वह देव विशेष है। इस रूप में समुद्र का पुत्र होने के कारण वह भी भोग योनि में ही है।

मेघदूतम् का नायक अपने प्रिया के भोग-विलास में इतना रमा हुआ है कि वह इसके सन्दर्भ में अपने कर्तव्य को भी भुला बैठता है। जैन मेघदूत का नायक इसके विपरीत है और वह स्वयम् ही संसार की विषमताएँ देखकर संसार से उपेक्षित हो जाता है। पवनदूत का नायक राजपुत्र है और इस रूप में वह राजा के उन गुणों से मण्डित है जो गुण राजा में होते हैं और जिन गुणों से राजा यशस्वी होते हैं।

इस रूप में हम इन तीनों खण्डकाव्यों में अलग-अलग प्रकार के नायक देखते हैं और यह भी देखते हैं कि इन तीनों रचनाकारों ने अपने-अपने सामर्थ्य से अपने तीनों नायकों को जिस रूप में प्रस्तुत किया है, वह इनका स्वरूप अपने-अपने जन्म के अनुरूप है। किसी भी काव्यकार की यही विशेषता होती है कि वह अपने द्वारा प्रस्तुत नायक अथवा नायिका को इस रूप में प्रस्तुत करे जिससे उसका काव्य-सामर्थ्य प्रकट होवे और उसके काव्य की विशेषता का मानदण्ड भी बन सके।

नायिका कुवलयवती :-

पवनदूतम् की नायिका कुवलयवती है। यह ऐसी नायिका है जो मलय पर्वत के पास निवास करने वाली किसी गन्धर्व जाति की कुल की है। वह युवतियों में माननीय और स्वरूपवती तथा सुन्दर युवती है एक बार विजय यात्रा पर जाने वाले राजकुमार को देख लेती है और उस पर आकर्षित हो जाती है। इसके बाद से वह निरन्तर उसी पथ की ओर देखती रहती है जिस ओर वह राजकुमार गया था। जब वह राजकुमार का दर्शन नहीं कर पाती है तो व्यथित होकर रुदन करती है। उसकी सुन्दरता का वर्णन करते हुए कवि लिखते हैं कि ऐसा प्रतीत होता है जिससे उसकी कटि मुट्ठी में पकड़ने योग्य है। प्रतीत होता है कि वियोग जन्य पीड़ा के कारण अत्यधिक क्षीण तनु धारण करती हुई इस समय यह सुन्दरी प्रत्यञ्चा की डोरी मात्र हो गई है।[१]

---

1. मुष्टिग्राहयं किमपि विधिना कुर्वता मध्यभागं
   मन्ये बाला कुसुमधनुषे निर्मिता कार्मुकाय।
   राजन्नुच्चैर्विरहजनितक्षामभावं वहन्ती
   जाता सम्प्रत्यहह सुतनः सा च मौर्वी लतेव।।
   प. दू., पृ. 105

इस खण्डकाव्य में कुवलयवती का जो वर्णन है उसके अनुसार वह अपने प्रिय के वियोग में अत्यधिक व्यथित है। यही कारण है कि वह क्रोधित होकर नीलकमल सदृश कर्णाभूषणों का अवलोकन नहीं करती। मालाओं से उद्वेजित होकर भुजलता को भी ढ़कती है। कमल से व्याकुल होने के कारण ताप की अधिकता से माप के लिए हृदय पर रखे गए सखी के हाथ से भी अचानक नेत्र बन्द करती हुई डरती है।[1]

उसकी ऐसी दशा देखकर कौन भला ऐसा होगा, जो करुणा से कातर न हो जावे। अभिप्राय यह है कि कुवलयवती की करुण अवस्था को देखकर सभी करुणा द्रवित हो जायेंगे, क्योंकि कोई भी सहृदय ऐसा नहीं है, जो किसी करुण की दशा देखकर करुणार्द न हो जावे।[2]

---

1. नोत्तं सत्वं दृशमपि नयत्युत्पले बद्धकोपा
   माल्यै क्लान्ता न भुजलतिकामप्यसौ संवृणोति।
   पद्मोविग्ना हृदयनिहितान्तसंपत्ति हेतोर्
   आलीहस्तादपि च सहसा मीलिताक्षी विभेति।।
   प. दू., पृ. 109
2. विन्यस्यन्ती शशिनि नयते दुर्दिनैरश्रुवारां
   धाराश्वासैर्वकुलकुसुमामोदमाघ्रातु कामा।
   शुश्रूषश्च भ्रमरविरुतं मूर्च्छया रक्षितासौ
   वीक्ष्यावस्थां क इव करुणाकातरः स्यान्न तस्याः।।
   वही, पृ. 119

यक्षिणी विशालाक्षी तथा राजमती से तुलना :-

महाकवि कालिदास ने यक्षिणी के रूप का चित्रण किया है। उसके अनुसार वह परम सुन्दरी है और उसका स्वरूप परम रम्य है। उसके रूप का वर्णन करते हुए कालिदास लिखते हैं कि वह दुबली-पतली, नुकीले दांतो वाली, पके हुए बिम्बाफल के समान होंठों वाली, पतली कमर वाली, डरी हुई हरिणी के समान आंखों वाली, गहरी नाभिवाली, नितम्बों के भार से धीरे-धीरे चलने वाली, कुचों के भार से झुकी हुई, युवतियों में ब्रह्मा की पहली रचना सी है।[1]

वह अपने प्रियके विरह में कातर भाव वाली है और वीणा बजाने में निपुण है। वह अपने प्रिय के नामों वाली गीतिका को गाती है और इसी से अपना मनोविनोद करती है। ऐसा करते हुए उसका समय व्यतीत होता है।[2]

---

1. तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वविम्बाधरोष्ठी
   मध्ये क्षामा चकित हरिणीप्रेक्षणा निम्ननाभिः।
   श्रोणीभारादल सग ना स्तोकनम्रा स्तानाभ्यां
   या तत्र स्याद्युवति विषये सृष्टिराद्येव धातुः।।
   मे. दू0 (उ) , 38
2. उत्संगे वा मलिनवसने सौम्य निक्षिप्य वीणां
   मद् गोत्रांकं विरचिपदं गेयमुद्गातुकामा।
   तन्त्रीमार्द्रा नयनसलिलैः सारयित्वा कथञ्चित्
   भूयो भूयः स्वयमपि कृतां मूर्च्छनां विस्मरन्ती।।
   वहीं, पृ0 26

कालिदास जब उस विरह विधुरा का निरूपण करते हैं तब वे यह वर्णन करते हैं कि वह तुम्हें देवताओं को नैवेद्य चढ़ाते हुए मिलेगी। वह मेरे वियोग से इतनी कृश होगी कि अनुमान द्वारा ही उसे पहचाना जा सकेगा। वह अपनी सारिका से पूंछ रही होगी कि हे रसिके ! क्या तू उसको कभी याद करती है?[1]

उसकी विरह वेदना का अनुमान करता हुआ यक्ष मेघ से कहता है कि हे मेघ ! वह देहली पर पुष्प रखकर मेरे विरह के जितने दिन रह गए हैं, उनको गिनते हुए मिलेगी। अथवा वह मेरे साथ पूर्व में किए गए विहार के क्षणों का स्मरण करती हुई दिखाई देगी।[2]

---

1. आलोके ते निपतति पुरा सा बलिव्याकुला वा
   मत्सादृश्यं विरह तनु वा भावगम्यं लिखन्ती।
   पृच्छन्ती वा मधुर वचनां सारिकां पंजरस्थां
   कच्चिद्भर्तुः स्मरसि रसिकेत्वं हि तस्य प्रियेति।।
   मे. दू. (उ.) 25
2. शेषान् मासान् विरहदिवसस्थापित स्यावधेर्वा
   विंन्यस्यन्ती भुवि गणनया देहलीदत्त पुष्पैः।
   मत्संगं वा हृदययनिहितारभ्भमास्वादयन्ती
   प्रायेणैते रमणविरहेष्वङ्गनानां विनोदाः।।
   वही , पृ0 27

राजीमती एक ऐसी नायिका है, जो अपने साथ विवाह का निश्चय मात्र हो जाने पर जीवन भर के लिए अपने पति की हो जाती है। यद्यपि उसका विवाह श्री नेमिनाथ के साथ नहीं होता है, तथापि वह संकल्प मात्र से ही श्री नेमि को अपना पति स्वीकार कर लेती है। जब स्थितियों के विपरीत होने पर श्री नेमि उसके साथ विवाह नहीं करते तो वह यह नहीं समझ पाती कि उसके मन द्वारा स्वीकृत पति ने उसका तिरस्कार क्यों कर दिया है।[१]

यद्यपि अपने पति की विरहावस्था में राजीमती दुखी होती है और अपने विरह तथा दुख को मेघ के माध्यम से अपने पति तक पहुँचाने का प्रयत्न करती है तथापि पति द्वारा विरक्तिभाव को स्वीकार कर लेने पर स्वयम् भी विरक्त होकर पति के मार्ग का अनुसरण कर लेती है और मुक्ति के पथ पर चल देती है।[२]

---

1. हेतोः कस्मादहिरिव तदासञ्जिनीमप्यमुञ्च
   न्यां निर्मोकत्वचमिव लघुं सोऽप्यसौ तन्न जाने
   यद्वा दैवे दधाति विमुखीभाव माप्तोऽप्यमित्रे
   त्तर्णस्य स्यात् किमु नियमने मातृजंघा न कीलः।।
   जै. मे., पृ० 5
2. सध्रीचीनां वचनरचनामेवमाकर्ण्य साऽथो
   पत्युर्ध्यानादवहितमतिस्तन्मयत्वं तथायत्।
   खड्ख्याता है रधिगतमहानन्दसर्वस्वसद्मा
   तस्माद् भेजेऽनुपमिति यथा शाश्वतीं सौख्यलक्ष्मीम्।।
   वही, पृ० 125

(ख) <u>अलंकार विमर्श</u> :-

कवि प्राकृतिक रूप से भावुकता के माध्यम से अपने काव्य की रचना करता है और इस अपनी कृति में वह चारुता का आधान करने की इच्छा रखता है। काव्य में जो चारुता आती है, वह अलंकारों के माध्यम से विशेष रूप से प्रकट होती है और यही कारण है कि कवि काव्य में अलंकारों का भरपूर प्रयोग करता है। वह अपनी रचना को सुन्दर बनाने के लिए नवीन से नवीन सामग्री का चयन करता है और उस सामग्री का ऐसा विन्यास करता है जिससे उसकी चारुता और मनोरमता अलौकिक हो जाती है जिन साधनों के द्वारा काव्य को सुन्दर और हृदयग्राही बनाया जाता है, वे साधन अलंकार ही मुख्य रूप से होते हैं।

अलंकारों के सन्दर्भ में अनेक आचार्यों ने अनेक प्रकार से अपने विचार व्यक्त किए हैं। अलंकार शब्द का अर्थ ही 'अलंकरोतीति अलंकारः' करने से शोभित करने वाला हो जाता है। इसका अर्थ यह होता है कि जो साधन काव्य को सुन्दर बनाते हैं, वे अलंकार कहे जाते हैं। एक आचार्य ने अलंकार की परिभाषा देते हुए यह लिखा है कि जो साधक काव्य में सौन्दर्य का आधान करते हैं, वे अलंकार कहे जाते हैं क्योंकि काव्य में व्यक्त सौन्दर्य ही अलंकार हैं।[१]

---

1. **सौन्दर्यमलड्कारः का.सू. 1/1/2**

अलंकार के विषय में जो दूसरी बातें कहीं जाती हैं, उनका अभिप्राय यह है कि अलंकारों में वैचित्र्य अवश्य होना चाहिए। जो वैचित्र्य से हीन है अर्थात् जिनमें विचित्रता नहीं है, वे अलंकार नहीं हो सकते हैं क्योंकि विचित्रता ही अलंकारों की कसौटी है, इसलिए वैचित्र्य अलंकारों का एक प्रकार से धर्म है।

आचार्य दण्डी ने जब अलंकारों पर विचार किया है तो उन्होंने यह व्यक्त किया है कि काव्य के जो शोभा बढ़ाने वाले धर्म हैं, वे अलंकार हैं।[1] दण्डी ने अभिप्राय को विशेष रूप से इस दृष्टि से विस्तारित किया है जिसमें यह कहा गया है कि अलंकार काव्य के आभ्यन्तर धर्म हैं।[2]

आचार्य उद्भट का यह अभिप्राय है कि अलंकार काव्य में गुणों की ही तरह महत्वशील हैं उनका यही कहना है कि अलंकार भी काव्य सौन्दर्य के हेतु हैं। आचार्य जयदेव का यह मत है कि काव्य तब तक काव्यत्व की पूर्णता को प्राप्त नहीं कर सकता, जब तक उसमें अलंकारों की उपस्थिति न होवे। इसका अभिप्राय यह हुआ कि काव्य के लिए अलंकार भी उतने महत्वपूर्ण हैं, जितने महत्वपूर्ण उसके लिए गुण हैं। काव्य के लिए गुणों के ही सदृश अलंकारों का भी महत्व है।[2]

---

1. काव्यशोभाकरान् धर्मानलंकारान्–प्रचक्षते। काव्या. 2/1
2. निर्दोषा लक्षणवती सरीतिर्गुणभूषणा।

सालंकाररसानेकवृत्तिर्वाककाव्यनामभाक्।। चन्द्र0 1/7

वर्गीकरण :-

अलंकारों के स्वरूप का निरूपण करने के साथ-साथ उनके भेदाभेद का निरूपण भी किया गया है। इस विषय में सामान्य कथन है, वह यह है कि जो सौन्दर्य मूलक तत्त्व शब्दों को प्रमाणित करते हैं और शब्दों के माध्यम से चमत्कृत करते हैं वे शब्दालंकार कहे जाते हैं किन्तु जो काव्य में किसी अर्थ को चमत्कृत करते हैं वे अथवा जिस साधन से काव्य का अर्थ चमत्कृत होता है, वे अर्थालंकार के नाम से जाने जाते हैं। जो शब्द और अर्थ को साथ-साथ प्रभावित करते हैं, वे उभयालंकार के नाम से जाने जाते हैं। एक आचार्य ने कहा कि जो जिस तत्व पर अर्थात् शब्द या अर्थ पर आश्रित होगा, वही उसका अलंकार होगा और जो शब्द तथा अर्थ दोनों पर आश्रित होगा, उसे उभयालंकार कहा जावेगा।[१] उभयालंकार के रूप में दो अलंकारकारों के नाम गिनाए गए हैं- श्लेष एवं वक्रोक्ति। इन दोनों में शब्द और अर्थ का चमत्कार दृष्टव्य है। इनका एक विश्लेषण इस प्रकार से किया गया है जिसमें यह कहा गया है कि जहाँ शब्द के अपरिवर्तित रूप में चमत्कार होगा, वहाँ शब्दालंकार होगा और जहाँ शब्द को बदलकर उसके स्थान पर उसका पर्यायवाची शब्द रख दिया जाएगा, वहाँ पर अर्थालंकार होगा।[२]

---

1. **यो यदाश्रितः स तदलंकारः। सा. द., पृ. 6**
2. **वही, पृ. 6**

(३) विवेच्य काव्यों में अलंकार योजना :-

काव्य के प्राण के रूप में अलंकारों की गणना की जाती है। इस दृष्टि से यदि देखा जाए तो इन खण्डकाव्यों में अनेक अलंकार प्रस्तुत किए गए हैं। इनमें से अनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अर्थान्तरन्यास श्लेष आदि मुख्य हैं।

अनुप्रास :-

पवनदूतम् खण्डकाव्य में यद्यपि कवि ने अलंकारों का प्रयोग किया है तथापि पदलालित्य का अभाव होने से अनुप्रास अलंकार का प्रयोग लगभग शून्य है। मेघदूतम् और जैन मेघदूतम् में अनुप्रास का प्रयोग जिस रूप में किया गया है, वह चारुता प्रदर्शित करता ही है, काव्य की रम्यता भी देखते बनती हैं। उदाहरण के लिए मेघदूतम् में एक स्थान पर शब्दों की साम्यता का प्रयोग करते हुए अनुप्रास अलंकार का सुन्दर प्रयोग है। यक्ष महाराज के द्वारा निष्कासित कर दिया जाता है और तब वह मेघ को देखकर हाथ में पुष्प लेकर उससे सन्देश ले जाने की प्रार्थना करता है।[1]

---

1. प्रत्यासन्ने नभसि दयिता जीवितालम्बनार्थी
   जीमूतेन स्वकुशलमयीं हारयिष्यन् प्रवृत्तिम्।
   स प्रत्यग्रै कुटजकुसुमैः कल्पितार्थाय तस्मै
   प्रीतः प्रीतिप्रमुखवचनं स्वागतं व्याजहार।।
   मे. दू. 1/4

जैन मेघदूतम् में अवश्य ही इस अलंकार का प्रयोग चारुता और रम्यता के साथ किया गया है। वहाँ पर एक स्थान में यह वर्णन आया है कि वर्षाकाल में स्वभाव से ईर्ष्या करने वाली स्त्रियाँ यदि मेघ से ईर्ष्या करती हैं तो यह ठीक ही करती हैं। मेघ भी श्याम होने के कारण नीला है और घनश्याम तो श्याम सुन्दर हैं ही। इस वर्णन में वहाँ पर अनुप्रास की छटा देखी जा सकती है।[१]

इसी प्रकार का एक दूसरा वर्णन भी है जिसमें बालक के जन्म के समय सूक्तिका कर्म के सम्पादन का कथन है। इसमें भी ऐसी ही भाषा प्रयुक्त है जो अपनी रम्यता से इस अलंकार की माधुरी प्रदान करती है।[२]

एक अन्य स्थान पर भगवान् के रूप माधुर्य का कथन करते हुए यह कहा गया है कि अब कहीं भी ऐसे कण अवशिष्ट नहीं है जिनसे भगवान् के रूप की तुल्यता का दूसरा रूप तैयार किया जा सके। न वे पण्डित हैं जो प्रभु की स्तुति में किन्हीं नवीन शब्दों की प्रस्तुति कर सकें।[३]

---

1. नीलीनीले शितिलयनयन् वर्षत्यश्रुवर्षन्
   गर्जत्यस्मिन् पटु कटु रटन्........।।
   जै. मे., पृ. 5
2. यस्य ज्ञात्वा जननमनघं कम्पनादासनाना
   मास्यां तासादिव न सहतां पूज्यपूजाक्षणेऽस्मिन्।
   वही, पृ. 11
3. वही, पृ. 19

उपमा :-

पवनदूतम् के रचनाकार ने अनेक सुन्दर अलंकारों का समावेश अपने इस काव्य में किया है। एक स्थान पर उरगपुर की धरती का कथन करते हुए निरूपण किया गया है कि यह धरती इस प्रकार की है जैसे लंकादीप की एक भुजा होवे।[1]

एक दूसरे स्थान पर कावेरी नदी के जल का वर्णन है जिसे गंगा जल के समान बताया गया है। यहाँ विशिष्ट कोटि का उपमा अलंकार है।[2]

मेघदूतम् और जैन मेघदूतम् में उपमा अलंकार के अनेकों उदाहरण भरे पड़े हैं। इन दोनों काव्यकारों ने विविध मनोहरता के साथ इस अलंकार का प्रयोग किया है।

मेघदूतम् में एक स्थान पर यक्ष मेघ से अपनी पत्नी के नेत्र की शोभा का व्याख्यान करते हुए कहता है कि जब तुमको वह अपने नेत्रों से देखेगी, तो वह नेत्र नीलकमल के सदृश होंगे।[3]

जैन मेघदूतम् में दो वर्णन संकेत के लिए पर्याप्त हैं जिनमें उपमा अलंकार का प्रयोग किया गया है और यह प्रयोग बहुत ही सुन्दर बन पड़ा है।[3]

---

1. लंकाद्वीपं प्रहित इव यो बाहुरेकः पृथिव्या।
   प. दू., पृ. 41
2. या गंगेव प्रकृतिसुभगा जायते केलीनां।
   केलिस्नाने कुचमलयजैः पाण्डिमानं दधाना।।
   वही, पृ. 49
3. मे. दू. 2/34, 2/353
4. जै. मे. दू., पृ. 67, 70

उत्प्रेक्षा :-

पवनदूतम् में इस अलंकार का प्रयोग भी चारुता के साथ किया गया है। एक स्थान पर यह वर्णन आया है कि काञ्चीपुर की स्त्रियां जब स्नान करती हैं तो उनके शरीर से उनका उत्तरीय हट जाता है तब सुबला नामक नदी अपनी तरंगरूपी आंचल से मानों उनके वक्षस्थल को ढ़ंक देती है। इसी प्रकार के अन्य उत्प्रेक्षा अलंकार का वर्णन और भी है।[1]

.जैन मेघदूतम् में भी इस अलंकार को भली-भाँति प्रस्तुत किया गया है और वहाँ पर एक स्थान पर यह वर्णन है कि कर्णाभूषणों से स्नान के समय टपकते हुए जल बिन्दु ऐसे लग रहे हैं, मानो वे अश्रुबिन्दु होवें।[2]

मेघदूतम् में जब मेघ को अलका जाने के लिए कहा गया तो वहाँ पर जो वर्णन कल्पवृक्ष के पत्तों के लिए अंशुक की सदृश्यता का वर्णनरूपता है, वह उत्प्रेक्षा की चारुता को ही प्रकट करता है। इसी प्रकार से नीचे जो सन्दर्भ किया जा रहा है उसमें 'शंका स्पृष्टा इव' में उत्प्रेक्षा की अनूठी योजना है।

---

1. प. दू. 13, 18, 26
2. जै. मे.दू. 2/1, 3/1
3. मे. दू. 1/62
4. नेत्रा सततगतिना यद्विमानाग्रभूमिः
   रालेख्यानां स्वजलकणिका दोषमुक्त्याद्य सद्यः।
   शंका स्पृष्टा इव.........।। वही, पृ. 2/6

अर्थान्तरन्यास :-

न केवल पवनदूतम् में अपितु मेघदूतम् तथा जैन मेघदूतम् में भी अर्थान्तरन्यास अलंकार का प्रयोग चारुता के साथ किया गया है। एक गन्धर्व देश की राजकुमारी जब पवन से अपने प्रिय के पास सन्देश ले जाने को कहती है तो वह कहती है कि उदार मना व्यक्तियों से की गई प्रार्थना कभी निष्फल नहीं होती है।[१] इसी प्रकार का एक वर्णन और दृष्टव्य है।[२]

मेघदूतम् के एक स्थान पर भी हम इस अलंकार की अद्भुत छटा को देख सकते हैं। जैसे कि मेघ के समक्ष खड़े होकर यक्ष कहता है कि अधम व्यक्ति से यदि अपनी कामना की पूर्ति हो भी जावे तो वह ठीक नहीं है किन्तु श्रेष्ठ व्यक्ति से की गई याचना निष्फल होने पर भी श्रेष्ठ है।[३]

---

1. तस्मादेव त्वयि खलुमया सम्प्रणीतोऽर्थिभावः
   प्रायो भिक्षाभवति विफला नैव युष्मद् विधेषु।।
   प. दू., पृ. 34
2. वाक्यौभिः करुणमसृणैः कोमलत्वं भजन्ते
   ग्रायाणोऽपि प्रकृतिसरसः किं पुनः तादृशीयः।
   वही, पृ. 137
3. जातं वंशे भुवन विदिते पुष्करावर्तकानां
   जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषं कामरूपं मघोनः।
   तेनार्थित्वं त्वयि विधिवशाद् दूरबन्धुर्गतोऽहं
   याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा।।
   मे. दू. 1/6, 1/8

जैनमेघदूतम् के भी अनेक ऐसे उदाहरण दिए जा सकते हैं जिनमें अर्थान्तरन्यास अलंकार की चारुता देखने को मिलती है। एक स्थान पर राजीमती कहती है कि जब विधाता प्रतिकूल होता है तो अपने इष्टजन भी शत्रुवत् हो जाते हैं, जैसे कि गाय के बछड़े के लिए दूध दुहते समय गाय का पैर ही उसके लिए बन्धन बन जाता है।[1]

इसी प्रकार का एक सन्दर्भ और प्रस्तुत किया जा सकता है जिसमें श्री नेमिनाथ को अपने वश में करने के लिए सत्यभामा आदि विचार करती हैं और कहती है कि इन्हें उसी प्रकार वश में कर लो जैसे ज्ञान चित्तवृत्ति को अवरूद्ध कर कोई अपने दोष मिटा देता है।[2]

---

1. हेतोः कस्मादहि तदासञ्जिनीमप्यमुञ्च
   न्मां निर्मोकस्वचमिव लघुं ज्ञोऽप्यसौ तन्न ज्ञाने।
   यद् वा दैवे दधति विमुखीभावमाप्तोऽप्यमित्रे
   तर्णस्य स्यात् किमु नियमने मातृजंघा न कीलाः।।
   जै. मे. 1/7
2. सत्यासत्यापित कृतकवाक्कोपमाचष्ट सख्यः
   साध्यः साम्नां न जलपृषतां तप्तसर्पिर्वदेषः।
   रुद्ध्वा तन्न स्वयमतिबलाच्चाशु वश्यं विधाय
   स्वान्तं संविद्वदिममबलेत्यात्म दोषोऽद्य नोद्यः।।
   वही, पृ. 3/13

अन्य अलंकार :-

इसके अतिरिक्त इन काव्यग्रन्थों में अन्य अलंकारों के प्रयोग की सुन्दर छटा भी देखने को मिलती है। यद्यपि जैन मेघदूतम् में वक्रोक्ति अलंकार का एक स्थान पर ही प्रयोग किया गया है कि वह प्रयोग अनुपम है और सुन्दर है।[१] इसी तरह से समासोक्ति अलंकार का जो स्वरूप इस खण्डकाव्य में है, वह भी सुन्दर और अतुलनीय है।[२] एक उदाहरण अतिशयोक्ति अलंकार का और भी दृष्ट्व्य है।[३]

मेघदूतम् में भी अन्य अनेक अलंकार देखने को मिलते हैं जिनका प्रयोग कवि ने बड़ी कुशलता के साथ किया है। जैसे कि एक स्थान पर रूपक और अर्थान्तरन्यास के अंगांगिभाव होने से संकर अलंकार की प्रस्तुति सुन्दर रूप में दिखाई देती है।[४] इसी काव्य केएक दूसरे प्रसंग में अतिशयोक्ति अलंकार की छटा प्रदर्शित की गई है।[५] यह कहा जाता है कि इन खण्डकाव्यों में अन्य अलंकारों का प्रयोग भी चारुता के साथ हुआ है।

---

1. जै. दू., 3/12
2. वही 1/31
3. वही 16, 1/25
4. मे. दू. 1/38
5. वही, पृ. 1/44

(ग) रस विर्मश

स्वरूप :- श्रृंगार, करुण, वीर आदि

यह मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि वह जन्म से ही रसानुभूति की ओर प्रवृत्त रहता है। यह प्रवृत्ति न केवल मनुष्य में होती है अपितु मानवेत्तर प्राणियों में भी इस प्रवृत्ति का दर्शन होता है। रसानुभूति की वही प्रवृत्ति मनुष्य की वाणी में भी प्रकट हुई और इसमें वैदिक काल से ही रस को काव्य के माध्यम से अपनी वाणी में उतारा। वैदिक दृष्टि में रस की महत्ता इस प्रकार की है जो प्राणी को हर स्थिति में आनन्दविभोर करती है और रसात्मकता से ही वह सुख की अनुभूति करता है। ऐसे ही एक भाव को व्यक्त करते हुए एक जगह कहा गया है कि विविध प्रकार के वाक् कौशल के होते हुए भी काव्य की आत्मा रस है।[1]

इस रूप में जो रस का दृष्टिकोण प्रारम्भ में था वही बाद के समय तक स्वीकार बना रहा। बाद के समय में आचार्यों ने जब इसका विशेष विवरण प्रस्तुत किया तो उन्होंने इसका लक्षण दिया और फिर इसकी उत्पत्ति का क्रम भी निरूपित किया। नाट्यशास्त्र के आचार्य भरतमुनि ने रस का जो लक्षण दिया है उसके आधार पर उन्होंने यह कहा है कि रस वह वस्तु विशेष है जिसका आस्वाद किया जा सके।[2] इसका प्रकटन विभाव, अनुभाव, व्यभिचारी भाव आदि से होता है।[3]

---

1. वाक् वैदग्ध्यप्रधानेऽपि रस एवात्र जीवितम्। अ. पु. 337/33
2. रस्यते आस्वाद्यते इति रसः। ना. शा. 6/33
3. विभावानुभाव व्यभिचारी संयोगाद् रस निष्पत्तिः। वही. 6/34

उद्धृत खण्डकाव्यों में मुख्य रूप से इनकी कथावस्तु के अनुसार शृंगार की अनुभूति अधिक मात्रा में करायी गयी। सन्दर्भित सभी खण्डकाव्य मुख्य रूप से ऐसी कथावस्तु का चयन करते हैं जिसमें प्रिय और प्रिया की विरहावस्था प्रमुख रूप से दर्शायी गयी है। स्वाभाविक है कि ऐसी कथावस्तु को प्रदर्शित करने के लिए शृंगार का अवलम्बन ही एकमात्र अवलम्बन है। जब रस का विवेचन किया गया है तो अनेक आचार्यों ने इसकी संख्या एक ही मानी है और अनेक भी मानी है।[१] इस दृष्टि से जब हम शृंगार को देखते हैं तो वह संयोग और विप्रलम्भ के रूप में दो तरह का दिखायी देता है। जैनमेघदूतम् में शृंगार का प्रयोग, विशेषकर विरहित शृंगार का प्रयोग अधिक स्पष्टता से है। विरहिणी राजीमती तब अत्यधिक दुःख का अनुभव करती है जब मेघ गरजता है और विद्युत चमकती है। शृंगार के साथ-साथ पीड़ा जन्य स्थिति भी जैनमेघदूतम् में देखी जाती है। जब राजीमती का हृदय विरहित अवस्था में चूने की तरह फूटकर दुःखित होता है।[३]

इस खण्डकाव्य में शान्तरस का प्रयोग भी देखा जा सकता है। यह उस अवस्था में दिखायी देता है जब नायक श्री नेमिनाथ आध्यात्मिक दृढ़ता के कारण स्वतन्त्र होकर विरहिणी राजीमती का परित्याग कर देते हैं। राजीमती भी उनकी इस आध्यात्मिक प्रवृत्ति को सराहती है।[४]

---

1. र. सि., पृ. 273
2. जै. मे., पृ. 1/6
3. वही (30) 4/7
4. वही 1/1, पृ. 4/39

मेघदूतम् खण्डकाव्य के विषय में स्पष्ट ही है कि इसमें संयोग शृंगार और वियोग-शृंगार की ही प्रधानता है। यद्यपि यह खण्डकाव्य मुख्य रूप से वियोग शृंगार का खण्डकाव्य है फिर भी इसमें जहाँ तहाँ संयोग शृंगार के दृश्य भी दिखायी दे जाते हैं। यक्ष जब मेघ को अलका का पथ बताता है तब वह यह इंगित करना नहीं भूलता कि तुम जिस पथ पर जाओगे उस पर उनके साथ संयोग कामिनी दिखायी देगी। जब तुम्हारा उनके साथ संयोग होगा तो वह तुम्हारी प्रेमाभिव्यक्ति का अद्‌भुत उदाहरण होगा।[१]

मेघदूतम् में विप्रलम्भ शृंगार का अद्‌भुत उदाहरण दिखायी देता है। यक्ष मेघ को अपना सन्देश देता हुआ जब यक्षिणी की विरह दशा का वर्णन करता है तो वह यह कहता है कि उसे तुम जिस रूप में देखोगे वह उसकी सर्वाधिक करुण-दशा होगी। मेरे वहाँ पर न होने पर वह जिस तरह से विरह व्यथा में निर्बल होगी और जिस तरह से कृश होकर शय्या में शयन कर रही होगी उससे ऐसा प्रतीत होगा जैसे कृष्णपक्ष में क्षीण होकर चन्द्रमा की एक कला होवे।[२] एक दूसरा दृश्य भी है जिसमें यक्ष कहता है कि विधाता मेरे प्रति बड़ा ही निष्करुण है क्योंकि स्वप्न की अवस्था में जब मैं उसे प्राप्त करने के लिए अपने हाथ उठाता हूँ तभी मेरी निद्रा भंग हो जाती है और मैं यथार्थ स्थिति में आ जाता हूँ।[३]

---

1. मे. दू. 1/25, 1/44-45
2. वही, पृ. 2/31
3. वही, पृ. 2/49

पवनदूतम् में जहाँ शृंगार रस का प्रयोग चारुता के साथ किया गया है वहीं इस खण्डकाव्य में अन्यरसों का प्रयोग भी सुन्दरता के साथ प्राप्त होता है। कवि कावेरी नदी में स्नान करती हुयी युवतियों की जलक्रीड़ा का निरूपण करता है और उस निरूपण में वह सुन्दर ढ़ंग से शृंगार की अभिव्यक्ति करता है।[१]

शृंगार के अतिरिक्त वह सौन्दर्य वर्णन करने का अद्‌भुत उदाहरण प्रस्तुत करता है। एक स्थान पर कवि ने राजा की सुन्दरता का वर्णन करते हुए यह लिखा है कि राजा जब शत्रुसेना पर आक्रमण करता है औंर विजय यात्रा के लिए निकलता है तब उसे देखने के लिए युवतियाँ एकत्रित होती हैं और उसकी मनोहर छटा को देखकर अपलक नेत्रों से उसका दर्शन करती हैं। वे बार-बार अपनी गर्दन मोड़ती हैं और इस रूप में राजा की मनोहरता के साथ-साथ उन युवतियों की मनोहरता भी आकर्षित करने वाली होती है।[२]

शृंगार और मनोहरता के अतिरिक्त पवनदूतम् में वीर रस का प्रयोग भी सुन्दर ढ़ंग से किया गया है। विजयपुर का राजा अपनी राजधानी में प्रसन्नतापूर्वक निवास करता है। वह विश्वविजयी है और अपनी विजय यात्रा में अजेय है। इस रूप में जहाँ राजा की राजधानी श्रेष्ठ है वहीं विजयपुर के राजा की वीरता भी यशस्करी है और यह यश राजा की वीरता को प्रदर्शित करता है।[३]

---

1. प. दू., पृ. 17
2. वही, पृ. 57
3. वही, पृ. 36

(ग) <u>छन्द विमर्श</u> :-

लौकिक तथा अन्य प्रकार के छन्दों का विवरण सर्वप्रथम पिंगल छन्द सूत्र में दिया गया है। इस ग्रन्थ में जहाँ वैदिक छन्दों का विवरण प्राप्त है वहीं पर लौकिक छन्दों का संकेत भी प्राप्त होता है।[1] इस रूप में यह संकेत प्राप्त किया जा सकता है कि छन्दों का यथार्थपरक विवरण आचार्य पिंगल से ही प्रारम्भ हुआ। बाद की परम्परा में पिंगल और छन्दशास्त्र लगभग एक दूसरे के पर्याय बन गए और यही विश्वसनीय हो गया कि छन्दों का विचार आचार्य पिंगल ने ही किया था।

लक्षण :-

छन्दों के विषय में विचार करते समय यह ज्ञात कर लेना चाहिए कि काव्य, गद्य, पद्य और चम्पू के भेद से तीन प्रकार का होता है। पद्य काव्य में यह आवश्यक है कि वह किसी न किसी छन्द पर आधारित हो। बिना छन्द को आधार बनाए पद्य काव्य की रचना हो ही नहीं सकती है। इस रूप में हम यह कह सकते हैं कि पद्य और छन्द लगभग पर्यायवाची हैं और जो पद्य हैं वही छन्द हैं। मात्रा, वर्ण, संख्या, यति, विराम, लय आदि ऐसे अपरिहार्य तत्व हैं जिसके बिना छन्द की रचना सम्भव नहीं है। प्रारम्भ में वैदिक वाङ्मय की रचना होने के कारण वैदिक छन्दों पर विचार किया गया था, किन्तु बाद में लौकिक संस्कृत की परम्परा में जब काव्य रचना होने लगी तो लौकिक छन्दों का विकास हुआ। 'छाद्यते अनेनेति छन्दः' इस व्याकरण व्युत्पत्ति के आधार पर जो किसी रचना का आच्छादन करने वाला है, वह छन्द है। अर्थात् छन्द के माध्यम से कोई भी रचना आच्छादित होकर अपना स्वरूप प्रकट करती है।

---

1. पि. सु. 5/18, 7/9, 7/35

वर्गीकरण :-

संस्त्रत साहित्य में वर्ण और मात्राओं को लेकर छन्दों की रचना का विधान है। लौकिक छन्दों में प्रायः चार पद होते हैं और यदि वे समवृत्त होते हैं तो उनमें नियमित वर्ण होते हैं। इसी तरह से वर्णों में भी लघु वर्ण और गुरु वर्णों का विधान नियमानुसार किया जाता है। जिन छन्दों की रचना मात्रिक आधार पर की जाती है उनमें ह्रस्व और दीर्घ मात्रायें भी नियमानुसार लगायी जाती हैं। इस रूप में जिन छन्दों की रचना में वर्ण प्रमुख होते हैं वे छन्द वर्णिक छन्द कहलाते हैं और जिन छन्दों की रचनाओं में मात्रायें प्रमुख होती हैं वे मात्रिक छन्द कहलाते हैं। इस तरह से छन्द दो तरह के हो जाते हैं। वर्ण पर आधारित वर्णिक छन्द और मात्राओं पर आधारित मात्रिक-छन्द।

वर्णों के आधार पर निर्मित किए गए छन्दों में वर्णों के ह्रस्व अथवा दीर्घ होने का विचार भी होता है। जिस वर्ण में वर्ण ह्रस्व होगा वह लघु माना जावेगा और यदि स्वर दीर्घ होगा तो उसे दीर्घ कहा जाएगा। अ,इ,उ,ऋ,लृ ये सभी स्वर ह्रस्व हैं। आ,ई,ऊ,ॠ,ए,ऐ,ओ,औ ये सभी दीर्घ स्वर हैं। इन्हीं के संयोग से जो स्वर ह्रस्व होते हैं उनसे युक्त व्यंजन को ह्रस्व वर्ण कहा जाता है और जो व्यञ्जन दीर्घ स्वर से संयोजित होते हैं उन्हें दीर्घ कहा जाता है। जो व्यञ्जन ह्रस्व हैं वे एक मात्रिक और जो व्यञ्जन दीर्घ हैं वे द्विमात्रिक माने जाते हैं। जिस व्यञ्जन में किसी भी मात्रा का योग नहीं होता वे वर्ण छन्दों की मात्रिक गणना में गृहीत नहीं होते।

व्यञ्जन में प्रयुक्त स्वरों की यह सामान्य गणना है। इसके अतिरिक्त दूसरे प्रकार की गणना भी है, जो मात्राओं के गिनने में प्रयोग में लायी जाती है। जैसे कि यह कहा गया है कि संयुक्त वर्णों से पूर्व का वर्ण ह्रस्व होने पर भी दीर्घ माना जाता है। उदाहरण के लिए अनन्त, अश्व आदि शब्दों में संयुक्त वर्ण के पूर्व जो ह्रस्व वर्ण वाला व्यञ्जन है वह दीर्घ की भाँति गिना जागाए। इसी तरह से जो वर्ण दीर्घ मात्रा से संयुक्त होगा वह दीर्घ ही गिना जाएगा। एक नियम यह भी है कि जो वर्ण अनुस्वार से संयुक्त होगा वह छन्द की आवश्यकता के अनुसार दीर्घ अथवा ह्रस्व दोनों तरह से गिना जा सकता है। जैसे- विध्वंस, वंश, दंश आदि। इसी प्रकार से जिन वर्णों में विसर्ग मिला हुआ है वे वर्ण भी छन्द की आवश्यकता के अनुसार ह्रस्व अथवा दीर्घ मात्रा वाले माने जायेंगे। जैसे- ततः, दुःखम्, दृष्टिः। इन नियमों के अतिरिक्त एक नियम यह भी है कि पद के अन्त में यदि छन्द की आवश्यकता है तो मात्रा को दीर्घ के रूप में स्वीकार किया जा सकता है और यदि छन्द की आवश्यकता है तो उसे ह्रस्व रूप में स्वीकार किया जा सकता है। इस प्रकार से छन्द विधान की जो परम्परा चली आ रही है उसके आधार पर मात्रिक और वर्णिक छन्द की गणना होती है और इसी आधार पर यह कहा जाता है कि काव्य के लिए छन्दों का विधान आवश्यक है।[1]

---

1. **संयुक्तादद्यं दीर्घं सानुस्वारं विसर्गसम्मिश्रम्।**
   विज्ञेयमक्षरं गुरुं पादान्तस्थं विकल्पेम्।।
   सा. द., पृ. 8 से उद्धृत

(ङ) आलोच्य काव्य और मन्दाक्रान्ता :-

जिन खण्डकाव्यों के विषय में विवेचन किया जा रहा है इनमें मन्दाक्रान्ता छन्द का प्रयोग हुआ। मन्दाकान्ता का जो लक्षण दिया गया है उसे अनेक आचार्यों ने अपनी-अपनी दृष्टि से पृथक्-पृथक् रूप में लिया है। पिंगल छन्दसूत्र में इस प्रकार का लक्षण दिया है। "मन्दाक्रान्ता म् भौ न तौ तगौ ग् समुद्रर्त्तस्वराः।[1]" आचार्य भरत ने मन्दाक्रान्ता को श्रीधरा नाम दिया है, और इसका लक्षण इस प्रकार प्रस्तुत किया है- चत्वर्यादौ च दशमं गुरुण्यथ त्रयोदशम्। चतुर्दशं तथा पञ्च एकादशमथापि च।। यदा सप्तदेश पादे शेषाणि च लघून्यपि। भवन्ति यस्मिन्सा ज्ञेया श्रीधरा नामतो यथा।[2]

एक अन्य आचार्य केशरभट्ट ने मन्दाक्रान्ता छन्द का लक्षण वृत्तरत्नाकर में दिया है- "मन्दाक्रान्ता जलधि षड्गैर्म्भौ नतौ ताद् गुरु चेत्।[3]" छन्दोनुशासनम् ग्रन्थ के लेखक हेमचन्द्राचार्य ने मन्दाक्रान्ता का लक्षण इस प्रकार दिया है-'मो भ्मौ तौ गौ मन्दाक्रान्ता घचैः।[4]" गंगादास ने अपने ग्रन्थ छन्दोमञ्जरी में मन्दाक्रान्ता लक्षण को उद्धृत किया है- "मन्दाक्रान्ताम्बुद्धिरसनगैभो भनौ तौ गयुग्मम्।"[5] एक अन्य आचार्य रामपाणिपाद ने मन्दाक्रान्ता का लक्षण इस रूप में प्रस्तुत किया है।

---

1. पि. छ. सू. 7/19
2. छ. अ. 2/290
3. छ. म. 2/17/4

उपायैश्च नयैरश्वैर्विरामो यत्र विद्यते। मन्दाक्रान्ता तु सा ज्ञेया मभौनततगा गुरुः।।[१] इसी तरह से कवि क्षेमेन्द्र ने भी मन्दाक्रान्ता लक्षण को प्रस्तुत किया है-'चतुःषट्सप्तविरतिवृत्तं सपतदशाक्षरम्। मन्दाक्रान्ता मभनतैस्तगगैश्चाभिधीयते।।[२]' वृत्तमौलिक ग्रन्थ के लेखक भट्टचन्द्रशेखर ने इस छन्द का लक्षण इस रूप में दिया है- कर्णौ पुष्पद्वितयसहितौ गन्धवद्धस्तयुक्ता हारं रूपं तदनु वलयं स्वर्णसञ्जातशोभम्। सबिभ्राणां विरुतल लितौ न पुरौ वा पदान्ते मन्दाक्रान्ता जयति निगमैश्छेदयुक्ता रसै श्च।।[३] इसी प्रकार महाकवि कालिदास ने भी श्रुतबोध नामक ग्रन्थ में मन्दाक्रान्ता का लक्षण स्पष्ट करते हुए लिखा है- चत्वारः प्राक्सुतनु गुरवो द्वादशैकादशौ चेन्मुग्धे वर्णौ तदनु कुमुदामोदिनि द्वादशन्त्यौ। तद्वच्चान्त्यौ युगरसहयैर्यत्र कान्ते विरामो मन्दाक्रान्ता प्रवरकवयस्तन्वि तां संगिरन्ते।।[४]

इस प्रकार से मन्दाक्रान्ता छन्द प्रत्येक चरण में सत्रह अक्षरों से युक्त होता है। इनमें से एक मगण, एक भगण, एक नगण दो तगण और दो गुरु होते हैं।

इस रूप में महाकवि कालिदास ने और आचार्य मेरुतुंग ने भी मन्दाक्रान्ता छन्द का प्रयोग किया है। पवनदूतम् खण्डकाव्य में मन्दाक्रान्ता छन्द का ही उपयोग किया गया है जिससे यह प्रतीति होती है कि यह छन्द ऐसा है जो प्रिय एवं प्रिया की विरह वेदना को प्रभावी ढ़ंग से व्यक्त कर सकता है।

---

1. वृ. वा. समवृत्त प्रकरण, 36
2. सु. ति. 1/35
3. वृ. भौ. 20/422
4. श्रु. बो. पृ. 18
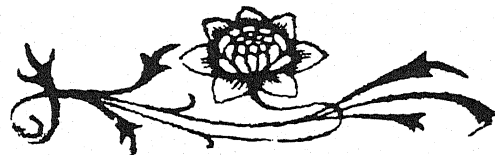
पंचम अध्याय

(विवेच्य ग्रन्थों में प्रकृति चित्रण एवं भौगोलिक दर्शन)

पंचम अध्याय

(विवेच्य ग्रन्थों में प्रकृति चित्रण एवं भौगोलिक दर्शन)

(क) **प्रकृति** :-

सृष्टि के आदि से ही मनुष्य का और प्रकृति का किसी न किसी रूप में सम्बन्ध रहा है। एक दूसरे रूप से हम यह भी कह सकते हैं कि पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश से मिश्रित जो भी जगत् का रूप दिखायी देता है यही प्रकृति का स्वरूप है। इससे भिन्न कुछ भी नहीं है जिसे पृथक् रूप में देखा जाए। जड़ और चेतन के रूप में हमें सृष्टि का जितना विस्तार दिखायी देता है, वह सभी कुछ प्रकृति में ही समाहित है। धरती, पहाड़, नदियाँ, पेड़-पौधे या जो भी कुछ है यही सब प्रकृति है। प्रकृति का एक अर्थ स्वभाव भी है। इस रूप में इस धरती पर स्वाभाविक रूप से जो दिखता है और स्वाभाविक रूप से जो उत्पन्न होता है, पलता है तथा विनष्ट होकर फिर से नये रूप में आने के लिए तैयार होता है यह सब प्रकृति का ही रूप है।

हमारा जन्म, हमारी सभी इच्छायें और क्रियायें इसलिए प्रकृति से नियन्त्रित हैं अथवा प्रकृति से मिली-जुली हैं क्योंकि हम स्वयं ही प्रकृति के एक अंग हैं। इसलिए प्रकृति का रसमयी स्वरूप, उग्र स्वरूप अथवा कोई अन्य स्वरूप है। किसी न किसी रूप से वह हमें प्रभावित करता है और बहतु कुछ दूर से हम प्रकृति के सहचर होकर अपना जीवन व्ययीत करते हैं। मनुष्यों के अतिरिक्त और भी जो जीव हैं वे भी प्रकृति के ही पराधीन हैं क्योंकि प्रकृति उन्हें पालती है, संरक्षण देती है और उनके विलीन होने पर प्रकृति स्वयं में लीन कर लेती है। इसलिए प्रकृति का आयाम विस्तृत है और वह सभी को अपने आप में समेटे हुए है।

(ख) **प्रकृति के विविध रूप :-**

१. **प्रकृति का मनोहारी रूप :-**

सन्दर्भित खण्डकाव्यों में प्रकृति का मनोहारी रूप हमें स्थान-स्थान पर दिखायी देता है। यक्ष का सन्देश लेकर जब मेघ यात्रा करता है तो वह मार्ग में अनेक प्रकार से विलास करता हुआ अपनी यात्रा पूरी करता है। यक्ष मेघ से कहता है कि जब तुम अलकापुरी की यात्रा करोगे तो तुम्हें एक सुन्दर सा आम्रकूट पर्वत पर बना हुआ लताकुञ्ज दिखायी देगा। तुम वहाँ पर ठहर जाना और अपनी सुन्दर ध्वनि के साथ गरजते हुए वहाँ पर वर्षा करना।[१] इसी तरह से वह कहता है कि जब तुम अपने मार्ग को पूरा करोगे तो तुम्हें वह अलका नगरी दिखायी देगी जहाँ पक्षियों का कलरव प्रातः-काल होता है, पूर्ण विकसित कमलों से सुगन्धि प्राप्त करके जहाँ की वायु प्रेमियों को आनन्द देती है।[२] यक्ष मेघ से कहता है कि आगे जब तुम अपनी यात्रा को ले जाओगे तो तुम्हें गम्भीरा नदी प्राप्त होगी। उस नदी का जल ऐसा स्वच्छ है जिस प्रकार किसी कामिनी का हृदय स्वच्छ है। इस रूप में उस जल में पड़ता हुआ तुम्हारा प्रतिबिम्ब ऐसा प्रतीत होगा जैसे- उसके हृदय में तुमने प्रवेश किया हो।[३]

---

1. मे. दू., 1/19
2. वही, 1/31
3. वही, 1/40

जैन-मेघदूतम् में प्रकृति के इस मनोरम रूप को स्थान-स्थान पर प्रस्तुत किया गया है। वहाँ पर वसन्त ऋतु का वर्णन किया गया है तो यह कहा गया है कि वसन्त के आने पर नये-नये कोपल वृक्षों में निकल आये हैं जो ऐसे प्रतीत होते हैं जिनमें मानो लक्ष्मी निवास करती है।[१] इसी तरह से एक वर्णन प्रकृति की उस सुन्दरता को प्रकट करता है जिसमें यह वर्णन आया है कि वहाँ पर वायु के शीतल झोंके धीरे-धीरे चल रहे हैं, वृक्षों की पुष्पमञ्जरियाँ खिली हुयीं हैं और चारों तरफ सौन्दर्य बिखरा हुआ है।[२]

पवनदूतम् भी स्थान-स्थान पर प्रकृति का सुन्दर रूप प्रस्तुत करता है। एक स्थान पर यह वर्णन है कि कावेरी नदी का जल युवतियों के शरीर में लगे हुए चन्दन के घुल जाने से ऐसा सुगन्धित रक्त वर्ण का हो गया है जो अपने सौन्दर्य को व्यक्त कर रहा है।[३] इसी तरह का इस खण्डकाव्य में एक तालाब का रम्य वर्णन भी किया गया है। वहाँ पर यह वर्णन है कि वहाँ पर पञ्चशर नामक एक तालाब है जिसे माण्डकर्ण ऋषि ने बनवाया था जिसके चारों ओर सालवृक्ष के सुन्दर वृक्ष लगे हैं। इस तालाब की रम्यता इससे और बढ़ जाती है क्योंकि इसमें अप्सरायें यदा-कदा आकर स्नान करती हैं।[४]

---

1. जै. दू. 2/2
2. वही, 2/13
3. प. दू. पृ. 49
4. वही, पृ. 53

२. <u>दौत्य रूप</u> :-

प्रकृति का यह रूप इन खण्डकाव्यों में ही स्पष्ट रूप में दिखायी देता है। पवन प्रकृति एक अंग है और वहीं वह दूत के रूप में काम करती है। पवनदूतम् में जब राजा लक्ष्मणसेन को उसकी नायिका देखती है तो वह विरह ताप से तप्त हो जाती है। अपने मन के भावों को लक्ष्मण सेन तक पहुँचाने के लिए नायिका पवन से ही प्रार्थना करती है और कहती है कि हे पवन! समस्त प्राणी तुम्हीं से युक्त हैं। तुम अपने स्वभाव सेकुशल और उदार हो, तुम्हारी गति मन से भी अधिक तेज है, इसलिए तुम मेरा सन्देश लेकर राजा के पास जाओ।[1]

जैन मेघदूतम् का भी यही विषय है। वह अपने प्रिय को सन्देश देने के लिए मेघ का चयन करती है जो प्रकृति का एक अंग है। वह मेघ से उसका दर्शन करने के पश्चात् सबसे पहले उसका स्वागत करती है फिर तीर्थङ्कर का परिचय कराती है और इसके पश्चात् कहती है कि तुम मेरा संदेश लेकर उन तक चले जाओ। वह अपनी व्यथा विस्तार से मेघ को बताती है और फिर यह बताती है कि यह सब तुम बड़े ही मृदु शब्दों में मेरा सन्देश उन्हें कहना।[2]

---

1. त्वत्तः प्राणाः सकलजगतां दक्षिणस्त्वं प्रकृत्याः
   जंघालं त्वां पवन मनसोऽनन्रं व्याहरन्ति।
   तस्मादेव त्वयि खलु मया सम्प्रणीतोऽर्थिभावः
   प्रायो भिक्षाभवति विफला नैव युष्मद्विधेषु।।
2. जै. दू., पृ. 4/13

मेघदूतम् का कथानक भी ऐसा ही है जिसमें मेघ को दूत बनाकर यक्ष उसे अलकापुरी भेजता है। कवि कालिदास प्रकृति के इस उपादान मेघ का वर्णन भी करते हैं और यह जिज्ञासा व्यक्त करते हैं कि धूम, ज्योति तथा सलिल सन्निपात से बने एवं वायु के द्वारा संचालित मेघ से भला सन्देश कैसे ले जाया सकेगा किन्तु फिर वे स्वयं ही इसका समाधान करते हैं कि विरह की अत्यधिक आकुल अवस्था में चेतन और अचेतन का भेद किसी को नहीं रहता।[१]

जब वे मेघ को सन्देश ले जाने के लिए प्रेरित करते हैं तो कहते हैं कि जो भी सन्तप्त हैं उन्हें सन्तोष देने वाले तुम्हीं हो इसलिए हे पयोद! मैं भी तुम्हारी शरण में उपस्थित हुआ हूँ। तुम मेरी प्रिया का सन्देश लेकर अलकापुरी की ओर प्रस्थान करो क्योंकि मैं अलकापुरी के राजा के क्रोध के कारण अपनी प्रिया से वियुक्त हो गया हूँ। तुम्हें जिस अलकानगरी में जाना है वह यक्षेश्वर की राजधानी है और वहाँ पर भगवान् शिव का विग्रह स्थित है।[२]

---

1. मे. दू. 1/5
2. सन्तप्तानां त्वमसि शरणं तत्पयोद! प्रियायाः
   सदेशं मे हर धनपतिक्रोधविश्लेषिस्य।
   गन्तव्या ते वसतिरलका नाम यक्षेश्वराणाम्
   बाहयोद्यान स्थितहरशिरश्चन्द्रिका धौतहर्म्या।।

   मे. दू. 1/7

३. <u>सेविका रूप</u> :-

सन्दर्भित खण्डकाव्यों में प्रकृति का सेविका का रूप भी देखने को मिलता है। जैसे कि एक स्थान पर यह कहा गया है कि अलकानगरी में कल्पवृक्ष लगा हुआ है। वह वृक्ष ऐसा है जो पहनने के लिए अनेक रंगों के वस्त्र प्रदान करता है, आंखों को दक्षता देने वाला मधु देता है, नवीन कोपलों के साथ पुष्प प्रदान करता है, अन्य अनेक प्रकार के अलंकार समय-समय पर देता है और बाद में चरणों में लगाये जाने योग्य महावर भी प्रदान करता है। इस तरह से प्रकृति का यह रूप सेवा भावी होकर सभी प्रकार की सामग्री उपलब्ध कराता है।[1]

कवि एक अन्य स्थान पर जब 'नीच्चैः' नामक पर्वत का वर्णन करता है तो यह कहता है कि वह पर्वत तुम्हारे विश्राम करने योग्य है, तुम्हारी सेवा के लिए वहाँ पर अनेक प्रकार के वृक्ष और वनस्पतियाँ लगी हुयीं हैं। तुम वहाँ विश्राम करना क्योंकि वह तुम्हारी सेवा के लिए प्रस्तुत रहेगा।[2] जैनमेघदूतम् में हम यह देख सकते हैं कि प्रकृति सेवाभाव के रूप में उपस्थित है। कवि वर्णन करता है कि जब वसन्त ऋतु चला जाता है तब ग्रीष्मऋतु इस प्रकार से उपस्थित होता है जैसे- कोई सेवक अपने स्वामी की सेवा के लिए प्रस्तुत होता है। यहाँ पर प्रकृति का एक अंग ग्रीष्म ऋतु सेवक की भाँति प्रस्तुत है।[3]

---

1. मे. दू. 2/13
2. वही ,पृ. 1/26
3. जै. दू. 2/29

४. **उपकारिका रूप** :-

प्रकृति का यद्यपि रूप बहुत अधिक मात्रा में दिखायी देता है तथापि हम एक-दो स्थलों में इस प्रकार देख सकते हैं जैसे- वह उपकार करने वाली होवे। कहीं-कहीं पर प्रकृति इस प्रकार का व्यवहार करती है जिससे जाने-अनजाने किसी का भला हो। यक्ष मेघ से कहता है कि जब तुम यात्रा करोगे तो मार्ग में तुम्हें देवगिरि पर्वत मिलेगा। वहाँ पर कार्तिकेय का मन्दिर है और तुम अपनी जलवर्षा से उन्हें अभिसिंचित करना। इससे वे आनन्द का अनुभव करेंगे और तुम अपने जीवन में धन्यता का अनुभव करोगे। इस रूप में यहाँ पर प्रकृति का उपकारी स्वरूप दिखायी देता है।[1]

५. **शिक्षिका रूप** :-

प्रकृति अपने कार्य-व्यवहार से इस तरह का कार्य करती है जिससे अनेक व्यक्ति उससे शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। एक स्थान पर कृष्ण की पत्नियाँ जैनमेघदूतम् में नेमिनाथ को सम्बोधित करती हुयी कहती हैं कि तुम राग में बंधे होने के कारण भला संसार बन्धन से मुक्त कैसे हो सकोगे। अर्थात् कोई भी व्यक्ति जो राग में बंधा है वह संसार बन्धन से मुक्त नहीं हो सकता। इसी तरह से वे जब लाल कमलों की माला की मेखला नेमिनाथ की कमर में बांधती हैं तो वे कहती हैं कि यह बन्धन उसी तरह है जैसे- प्रकृति का बन्धन आत्मा के लिए होता है।[2]

---

1. मे. दू. 1/43
2. जै. दू0. 2/21

इसी प्रकार प्रकृति का एक रूप और भी दिखायी देता है जो उपदेश देता हुआ शाप है। एक स्थान पर यह वर्णन आया है कि मूर्च्छित अवस्था में पड़ी हुयी राजीमति को चन्दन के जल से उसी तरह जागृत किया गया जैसे- कुमार्ग की ओर जाते हुए किसी शिष्य को आचार्य सन्मार्ग में प्रवृत्त करता है।[१]

एक दूसरा सन्दर्भ इस रूप में दिया जा सकता है जिसमें यह वर्णन किया गया है कि अपने प्रताप से निरन्तर बढ़ता हुआ सूर्य निरन्तर बढ़ रहा है किन्तु शीतल स्वभाव वाली रात्रि शीतल होती हुयी भी घट रही है। यहाँ पर सूर्य के ताप को और रात्रि की शीतलता को लक्ष्य करके विषमालंकार के प्रयोग से यह बताया गया है कि कोई यदि श्याम चरित्र वाला है तो वह शीतल होने पर घटता ही है जैसे कि रात्रि शीतल तो है किन्तु श्याम होने के कारण घट रही है। यहाँ पर प्रकृति के माध्यम से यह उपदेश संकेतित है कि मलिन स्वरूप, मलिन स्वभाव वाला व्यक्ति कितना ही शीतल क्यों न हो वह घटता है यह प्रकृति का स्वाभाविक नियम है।[२] इस रूप में कवि ने प्रकृति का जो वर्णन जहाँ भी किया है वहाँ पर न केवल कथ्य की विलक्षणता है अपितु भावगाम्भीर्य भी है और प्रकृति को जिस रूप में उपस्थापित किया गया है उस रूप में प्रकृति का उपदेशक रूप सामने आता है।

---

1. जै. दू. 2/25
2. वही, पृ. 2/31

पवनदूतम् में भी एक ऐसा सन्दर्भ है जिसमें प्रकृति का उपदेशक रूप देखा जा सकता है। वहाँ पर एक स्थान पर पवन को यह कहा जा रहा है यदि तुम केरल की युवतियों का रंगरास देखना चाहते हो तो तुम्हें ययाति की उस विख्यात नगरी में जाना पड़ेगा जहाँ वृक्ष और लतायें आपस में आलिंगन बद्ध होकर प्रिय और प्रिया को आलिंगन का उपदेश करते हैं।[1]

६. <u>मानवीय रूप</u> :-

मनुष्य और प्रकृति का सहज स्वाभाविक स्वरूप परस्पर एक-दूसरे से मिलता हुआ दिखायी देता है इसलिए इन खण्डकाव्यों में स्थान-स्थान पर ऐसे दृश्य दिखार्यी देते हैं जहाँ पर प्रकृति अपने मानवी स्वरूप में परलक्षित होती है जैसे कि पवनदूतम् में एक स्थान पर यह कहा गया है कि राजप्रासाद में श्याम वर्ण की इन्द्रनील मणियों से बनी हुयी बावड़ी किसी भी युवती की मनोहर रोमावली सी प्रतीत होती है। यहाँ पर नीलमणियों की नीलरेखायें पृथ्वी को युवती के सदृश्य और उसकी छटा को रोमराजि के सदृश्य बताती हैं।[2]

एक दूसरा सन्दर्भ इस प्रकार का है जिसमें यह वर्णन आया है कि जलक्रीड़ा करते समय प्रायः स्त्रियों का आंचल खिसक जाता है। कवि वर्णन करता है कि वहाँ पर यमुना का युवती के रूप में तथा जल उसके आंचल सा प्रतीत हो रहा है।[3]

---

1. प. दू., 26
2. वही, पृ. 54
3. वही, पृ. 35

मेघदूतम् में प्रकृति का जो मानवीय रूप दिखायी देता है वह स्थान-स्थान पर रम्यता को प्रकट करता है जैसे कि क्षिप्रा नदी के सम्पर्क से बहने वाला वायु अपनी शीतलता से युवतियों को इस तरह आहलादित करता है जैसे- कि वह उनका प्रियतम होवे। यहाँ पर शीतल वायु में प्रियतम का आरोपण प्रकृति का मानवीकरण है।[१] इसी तरह का वर्णन जैनमेघदूतम् में भी देखने को मिलता है। वहाँ पर एक स्थान का वर्णन इस प्रकार का है जिसमें वनलक्ष्मी को नृत्यगीत का आयोजन करने वाला बताया गया है। वायु वाद्ययन्त्र बजा रही है, भौंरे मधुर गीत गा रहे हैं, कोयले भी अपना मधुर संगीत दे रही हैं और लतायें अपने हिलते हुए पत्तों से मानो नृत्य कर रही हैं। यहाँ पर पूरी प्रकृति अपने नर्तन से अपना मानवी रूप प्रकट कर रही है।[२]

एक दूसरा वर्णन भी है जिसमें उद्यान का वर्णन है। वह उद्यान ऐसा है जिसमें कमल ही उसके नेत्र हैं, वापियाँ मुख हैं, पुष्प मुस्कुराहट है, पुष्पों से झरता हुआ पराग उनका अनुराग है, अनेक प्रकार के नीले पत्ते उनके वस्त्र हैं और इस प्रकार से पूरा का पूरा उद्यान ऐसा प्रतीत होता है जैसे- मानवी रूप में श्रीकृष्ण तथा नेमिनाथ के लिए उपस्थित हो गया है।[३]

---

1. मे. दू. 1/31
2. जै. दू., 2/14
3. वही, पृ. 2/16

(ग) **भौगोलिक स्थान :-**

जैनमेघदूतम् कालिदास मेघदूतम् तथा पवनदूतम् खण्डकाव्य में सन्देश लेकर जाने वालों के लिए रास्ता बताया गया है। दो काव्यों में मेघ यात्रा करता है एक काव्य में वायु यात्रा करता है। कवि इन यात्रियों के लिए मार्ग बताता चलता है और मार्ग में पड़ने वाले जो भी विशेष स्थान हैं उनका कथन करता चलता है। ऐसा करने पर अनेक ऐसे स्थानों का नाम इन काव्यों में आया है जो हमें भारतीय भूगोल का परिचय कराते हैं। इनमें पर्वत, नदियाँ, सागर, नगर, तीर्थ और मन्दिर आदि मिलते हैं।

१. पर्वत- माल्यवान् :-

पवनदूतम् में पवन को जब यात्रा करने के लिए कहा जाता है तो उससे यह कहा गया है कि वह ऐसे मार्ग से यात्रा करें जो काञ्ची नगरी से प्रारम्भ होता है और केरल की ओर जाता है। इस मार्ग में माल्यवान् पर्वत ऐसा है जो रास्ते में पवन को मिलेगा। यह माल्यवान पर्वत कहाँ पर है आज इसके विषय में बहुत प्रामाणिक रूप से कहना सम्भव नहीं है। किन्तु माल्य पर्वत का जो वर्णन किया गया है वह पाण्डदेश में पहुँचने का मार्ग है। प्रतीत यह होता है कि चन्दन के अत्यधिक उत्पन्न होने के कारण इसका नाम मलय हुआ है क्योंकि मलय चन्दन का पर्याय है। कवि ने वर्णन में भी यही लिखा है कि चन्दन के वृक्षों की सुगन्धि को लेकर मलय पर्वत की तलहटी को पार कर आगे तुम्हें जाना है। वह ऐसा स्थान है जिसमें भुजंगों अथवा शर्पों का अत्यधिक बाहुल्य है।[१]

---

1. प. दू. श्लोक 7

रामगिरि :-

कालिदास द्वारा रचित मेघदूतम् में रामगिरि आश्रम का वर्णन किया गया है। इस वर्णन में अपनी पत्नी से वियुक्त होने वाला यक्ष जब मेघ के द्वारा अपना सन्देश अलकापुरी तक भेजना चाहता है तब कालिदास यह वर्णन करते हैं कि कोई एक यक्ष अपनी कान्ता के विरह से व्यथित होकर अपने स्वामी से निर्वासित होने से रामगिरि नामक आश्रम में निवास कर रहा था।[1] यह रामगिरि आश्रम कहाँ पर उपस्थित है इसका निश्चयात्मक रूप से निर्धारण करना भी कठिन है। कुछ आचार्यों ने विशेषतः कालिदास के व्याख्याकार मल्लिनाथ ने चित्रकूट पवर्त को ही रामगिरि आश्रम के नाम से जाना है। कुछ विद्वानों का यह कहना है कि मध्यप्रदेश में जो रामगढ़ नामक पर्वत है वही रामगिरि आश्रम है। अमरकूट या आम्रकूट पर्वत के समीप नर्मदा का उद्गम स्थान है और यहाँ भी रामगिरि आश्रम हो सकता है।[2]

कैलाश पर्वत :-

कालिदास के मेघदूतम् में ही मानसरोवर के पास स्थित कैलाश-पर्वत का वर्णन आया है। वहाँ पर यह वर्णन किया गया है कि हे मेघ! तुम्हारा जो गर्जन कानों को सुख देने वाला है उस गर्जन को सुनकर मानसरोवर तक जाने के लिए जिन

---

1. कश्चित् कान्ता विरहगुरुणा स्वाधिकारात् प्रयत्तः
   शपेनास्तङ्गमितमहिमा वर्षभोग्येण भर्तुः।
   यक्षश्चक्रे जनक-तनया-स्नान-पुण्योदकेषु
   स्निग्धच्छायातरुषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु।। मे. दू. 1/1
2. वहीं, 1/1 पर हिन्दी टिप्पणी

हंसों के मन में उत्कण्ठा है वे अपने मुखों में मृणाल दण्ड लेकर तुम्हारे साथ यात्रा करेंगे और कैलाश पर स्थित मानसरोवर तक तुम्हारे साथ जायेंगे। इस वर्णन में कैलाश पर्वत का संकेत किया गया है।[1]

आम्रकूट तथा विन्ध्याचल :-

यह पर्वत भी एक प्रसिद्ध पर्वत है जिसे कालिदास ने मेघ के मार्ग में संकेतित किया है। यक्ष ने मेघ से कहा कि तुम उस आम्रकूट पर्वत को प्राप्त करना जिस पर पके हुए आम के फल लगे हैं और जिसे आकाश में विचरण करने वाले देवी-देवता निरन्तर देखते रहते हैं। वह आम्रकूट पर्वत ऐसा है कि जिसमें अनेकों घने लताकुञ्ज हैं और उन लताकुञ्जों में निवास करने वाले वनचर अपनी प्रियाओं के साथ निरन्तर विहार करते हैं। इस पर्वत की विशेषता में कालिदास ने अनेक श्लोकों का आख्यान किया है जिसमें उसे चिकनी बेणी के समान काले रंग के शिखर वाला बताया गया है और यह बताया गया है कि उस पर्वत में निरन्तर वनचर अपना आनन्द बिहार करते हैं। इस पर्वत पर पहुँचने पर यक्ष ने मेघ से वहाँ रुकने का संकेत किया है और यह कहा है कि इसके आगे धीरे-धीरे विन्ध्याचल पर्वत को पार करके नर्मदा को प्राप्त करोगे। आम्रकूट पर्वत के साथ ही विन्ध्य पर्वत अथवा विन्ध्याचल का वर्णन भी किया गया है।

---

1. मे. दू., 1/11
2. स्थित्वा तस्मिन् वनचरवधूभुक्तकुञ्जे मुहूर्त
   तोयोत्सर्गद्रुततरगतिस्तत्परं वर्त्म तीर्णः।
   रेवां द्रक्ष्यस्युपलविषमे विन्ध्यपादे विशीर्णां
   भक्तिच्छेदैरिव विरचिता भूतिमङ्गे गजस्य।। मे. दू., 1/19

नीच्चैः पर्वत :-

यक्ष मेघ के लिए मार्ग का वर्णन करता हुआ यह कहता है कि तुम विदिशा से आगे चलकर नीच्चैः पर्वत में विश्राम के लिए पहुँचना। वह पर्वत ऐसा है कि उसमें वेश्यायें निरन्तर अपनी कामक्रीड़ायें करती रहती हैं। उस पर्वत की अनेक गुफायें अपनी विशेष प्रकार की सुगन्धि से चारों ओर के वातावरण को सुगन्धित रखती हैं। अपने स्वरूप से वह पर्वत ऐसा प्रतीत होता है जैसे वहाँ के रहने वाले यौवन का प्रकटीकरण कर रहे होवें।[१]

हिमालय :-

कालिदास ने भगवान् शंकर के स्तवन में अनेक श्लोकों का निर्माण किया है। इसलिए वे स्वाभाविक रूप से हिमालय का वर्णन करते हैं क्योंकि भगवान् शंकर का निवास स्थान हिमालय ही है। यक्ष मेघ को कहता है कि हिमालय में भगवान् शंकर निवास करते हैं उस हिमालय की ऊँची-ऊँची धवल-चोटियों पर अपने श्याम-वर्ण से जब बैठोगे तो ऐसा प्रतीत होगा जैसे शिव के वाहन नन्दी द्वारा कीचड़ सुखाकर उस पर्वत की चोटियों पर रख दिया गया हो।[२]

---

1. नीचैराख्यं गिरिमधिवसेस्तत्र विश्रामहेतो–
स्त्वत्संपर्कात् पुलकितमिव प्रौढ़पुष्पैःकदम्बैः।
यः पण्यस्त्री रतिपरिमलोद्गारिभिर्नागराणा–
मुद्दामानि प्रचयति शिलावेश्मभिर्यौ वनानि।। मे. दू., 1/26
2. वही, पृ. 1/52

इसी प्रकार हिमालय का वर्णन जब कालिदास ने किया है तो यह संकेत किया है कि उस पर्वत पर बड़े-बड़े देवदार के वृक्ष लगे हुए हैं। जब वृक्ष वायु के वेग से आपस में रगड़ पाते हैं तो उनसे अग्नि की चिनगारियाँ फूटती हैं। उन चिनगारियों से चमरी गायों की पूँछ झुलस जाती है। यक्ष कहता है कि मेघ! इस स्थिति में तुम जल-वर्षा करके शीतलता प्रदान करना।[1]

रैवत पर्वत :-

जैनमेघदूतम् का प्रारम्भ करते हुए रैवत पर्वत का संकेत आया है। इसमें यह कहा गया है कि तीनों लोकों के उपदेशक अत्यन्त बुद्धिमान नेमिनाथ ने चित्-आनन्द की प्राप्ति की इच्छा से सभी पाप की मूल राजीमति का त्याग कर दिया था और इसके पश्चात् देवतरु के सदृश अतिश्रेष्ठ पर्वत पर आरोहित होने की इच्छा से रैवत-पर्वत को स्वीकार किया था। यह पर्वत कहाँ पर है इसका विशेष संकेत इस खण्डकाव्य में नहीं किया गया है।[2]

मेरु पर्वत :-

इसी खण्डकाव्य में मेरु पर्वत का वर्णन भी किया गया है। एक वर्णन में नेमिनाथ के हाथ के स्पर्श के प्रभाव को वर्णित करते हुए कहा है कि हाथ ऐसा है कि मेरु पर्वत को दण्ड और पृथ्वी को छत्र बना सकता है। यही एक ऐसा स्थान है जिसमें मेरु पर्वत का संकेत इस खण्डकाव्य में किया गया है। यह पर्वत भी कहाँ पर है, इसका विशेष वर्णन इस खण्डकाव्य में प्राप्त नहीं होता है।[3]

---

1. मे. दू., 1/53
2. कश्चित्कान्तामविषयसुखानीच्छुरत्यन्तधीमा
   नेनोवृत्तिं त्रिभुवनगुरुः स्वैरमुज्झाञ्चकार।
   दानं दत्वासुरतरुरिवात्युच्चधामारुरुक्षुः
   पुण्यं पृथ्वीधरवरमथो रैवतं स्वीचकार।। जै. दू. 1/1
3. वही, पृ. 1/44

२. सरितायें :-

सन्दर्भित खण्डकाव्यों में जिन प्रदेशों की सन्देशवाहकों ने यात्रायें की हैं उन प्रदेशों के अनेक नदियों के नाम भी दिए गए हैं। इन नदियों की क्या विशेषतायें हैं, इनकी सीमायें क्या हैं इस पर भी प्रकाश डाला गया। नदियाँ जहाँ एक ओर जलवाहिकायें होती हैं वहीं दूसरी ओर इनके आनन्द का अनुभव करते हैं। नदियों के तट पर रहने वाली युवतियाँ अनेक प्रकार से इन नदियों में क्रीड़ायें करती हैं और सुख का अनुभव करती हैं। इन खण्डकाव्यों ने इन विविध नदियों का विस्तार से वर्णन किया है।

गंगा :-

मेघदूतम् में कालिदास ने अलका के वर्णन में गंगा का परिचय दिया है। मेघ को सम्बोधित करता हुआ यक्ष कहता है कि हे बन्धु! प्रियतम के समान कैलाश की गोद में खिसक गया है गंगा रूपी वस्त्र जिसका ऐसी अलका को प्रियतम की गोद में खिसक गयी है साड़ी जिसकी ऐसी कामिनी देखकर तुम अवश्य पहचान जाओगे। वह अलका और गंगा वर्षा के समय मेघसमूह को वैसे ही धारण करती है जैसे- क्रोधरहित कोई कामिनी मोतियों की लड़ियों से गुथे केशपाश को धारण करती है।[१]

---

1. तस्योत्संगे प्रणयनि इव स्त्रस्तगंगादुकूलां
   न त्वं दृष्ट्वा न पुनरलकां ज्ञास्यसे कामचारिन्।
   यावः काले वहति सलिलोद्गारमुच्चैर्विमाना
   मुक्ताजालग्रथितमलकं कामिनीवाभ्रवृन्दम्।। मे. दू. 1/63

कावेरी :-

पवनदूत के रचनाकार ने अपने खण्डकाव्य में जिस नदी का वर्णन किया है उस नदी का नाम कावेरी कहा गया है। वह नदी ऐसी है जिसके किनारों पर घने वृक्षों के समूहों के कुञ्ज बने हुए हैं, पक्षी अनेक प्रकार से कलरव करते हैं, युवतियाँ जिसमें उल्लासपूर्वक स्नान करती हैं और जिसका शीतल जल सुख देने वाला तथा आहलाद्कारी है। वह कावेरी नदी ऐसी है जो अपनी धवलता को धारण करती हुयी भी युवतियों के स्नान करने पर उनके शरीर में लगे हुए चन्दन के धुल जाने से कुछ-कुछ रक्तिम वर्ण वाली हो गयी है। उसकी लहरें ऐसी हैं मानो वे किसी कामिनी की क्रोध से फड़कती हुयी भौंहें हों। उसकी चंचलता भी आनन्ददायक है।[१]

क्षिप्रा :-

कालिदास ने उज्जयिनी नगरी के सन्दर्भ में क्षिप्रा नदी का संकेत किया है। इसमें इन्होंने यह लिखा है कि उज्जयिनी एक विशाल नगरी है जिसके समीप ही क्षिप्रा नदी का प्रवाह प्रवाहित होता है। उस नदी के तट पर सारस पक्षियों का कलरव मधुरता से गुञ्जरित होता है। उस नदी में जो विकसित कमल हैं उनकी सुगन्धि से शरीर पुलकित हो उठता है ऐसा क्षिप्रा नदी के स्पर्श से प्रवाहित होने वाला वायु कामिनियों के लिए प्रियतम की तरह है।[२]

---

1. **या गंगेव प्रकृतिसुभगा जायते केरलीनां,**
   केलिस्नाने कुचमलयजैः पाण्डिमानं दधाना।
   शश्वद्गोत्रस्खलनजनितत्रास लालस्य सिन्धो,
   रुद्वीचिभ्रुश्चरणपतन प्रेमवाचां रसज्ञा।। प. दू. श्लो. 16
2. **यत्र स्त्रीणां हरति सुरतग्लानिमङ्गानुकूलः**
   शिप्रावातः प्रियतम इव प्रार्थना चाटुकारः।। मे. दू. 1/31

निर्विन्ध्या तथा सिन्धु नदी :-

कालिदास ने अपने मेघदूतम् में निर्विन्ध्या नदी का संकेत किया है उन्होंने लिखा है कि यक्ष मेघ को सम्बोधित करता हुआ कहता है कि मेघ! तुम्हारे मार्ग में निर्विन्ध्या नदी प्राप्त होगी। यह नदी ऐसी है कि उसके दोनों तटों के ओर कलरव करते पक्षी गण मानो उसके लिए करधनी हैं। वह अपनी मदमत्ता से इस प्रकार बह रही है कि पत्थरों पर गिरती हुयी भी वह अपनी मनोहरता को प्रकट कर रही है। उसके जलप्रवाह में पड़ने वाले भ्रमर मानो उसकी नाभि हों और वही अपने चंचल हाव-भाव के प्रदर्शन से मानो अपना विलास प्रदर्शित कर रही है।[1]

जिस प्रकार से कवि ने निर्विन्ध्या नदी का वर्णन किया है उसी तरह से उन्होंने सिन्धु नदी का संकेत भी मेघदूतम् काव्य में किया है। वे इस नदी का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि सिन्धु नदी स्त्रियों की चोटी की तरह कम जल वाली हो गयी है। उसका जल कम इसलिए हुआ है क्योंकि वह तेरे वियोग से व्यधित है। इसी तरह कवि कल्पना करता है कि वह तेरे वियोग के कारण पीली हो गयी है। अपने इस कथन के समर्थन में कवि रूपक देता है कि उसके तट पर जो वृक्ष

---

1. वीचिक्षोभस्तनितविहगश्रेणिकाञ्चीगुणायाः
   संसर्पन्त्याः स्खलितसुभगं दर्शितावर्तनाभेः।
   निर्विन्ध्याः पथि भवरसाभ्यन्तरः सन्निपत्य
   स्त्रीणांमाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु।। मे.दू. 1/28

लगे हैं उनके पत्ते पीले पड़ गये हैं और वे पीले-पत्ते सिन्धु नदी में गिरकर उसके जल का पीलापन बढ़ा देते हैं। उससे ऐसा लगता है कि मानो तुम्हारे वियोग में पीली हो गयी है। यक्ष मेघ से कहता है कि यह वह तुम्हारे सौभाग्य की सूचना है इसलिए तुम ऐसा करना जिससे उसका पीलापन कम हो जावे अर्थात् वह जल से परिपूर्ण हो जावे। इसका अभिप्राय है कि तुम परिपूर्ण जलवर्षा करना।[1]

नर्मदा :-

कालिदास ने मेघदूतम् में यक्ष के द्वारा मेघ को मार्ग बताते हुए यह कहा है कि जब तुम आम्रकूट पर्वत पर विश्राम करने के पश्चात् आगे की ओर चलोगे तो विन्ध्याचल पर्वत के विस्तृत प्रदेश में तुमको विस्तृत रेवा नदी के दर्शन होगें। यह रेवा नदी जिसे नर्मदा के नाम से भी जाना जाता है, विन्ध्य उपत्तिकाओं में ऐसी फैली हुयी है जैसे हाथी के शरीर में विभिन्न प्रकार की रेखाओं से श्रृंगार की रचना कर दी गयी हो। तुम्हारे द्वारा वहाँ पर जल की वर्षा किए जाने से वहाँ का सम्पूर्ण जामुनों का निकुञ्ज सुभाषित हो गया होगा, वह जल लेकर तुम आगे का मार्ग तय करना।[2]

---

1. वेणी भूतप्रतनु सलिललाऽसावतीस्य सिन्धुः
   पाण्डुच्छाया तटरुहतरु-भ्रंशभिर्जीर्णपर्णैः।
   सौभाग्यं ते सुभग विरहावस्था व्यञ्जयन्ती।
   कार्श्यं येन त्यजति विधिना स त्वयैवोपपाद्यः।।
   मे. दू. 1/29
2. मे. दू. 1/19-20

सुबला नदी :-

पवनदूतम् के रचनाकार ने सुबला नाम की नदी का एक सन्दर्भ दिया है। यह नदी सम्भवतः काञ्चीपुर के पास में बहती है। इस नदी में जब युवतियाँ स्नान करती हैं तब विलासलीला में उनके वक्षस्थल पर पड़ा हुआ उत्तरीय हट जाता है। उस समय सुबला नदी के जल के ऊपर का फेन न केवल अपने फेनरूपी उत्तरीय से उनके वक्षस्थलों को ढ़क देता है अपितु मानो फेन रूपी मुस्कान से सम्पूर्ण वातावरण को आहलादित कर देता है।[1]

३. सागर तथा सरोवर :-

इन खण्डकाव्यों में स्थान-स्थान पर समुद्रों और सरोवरों का वर्णन भी आया है। पवनदूतम् खण्डकाव्य में सागर की चर्चा की गयी है। एक स्थान पर पर यह कहा गया है कि गंगा नदी का फेन लहर रूपी हाथ में पकड़ा हुआ है। उस नदी के तट पर जो हंस हैं मानो वे उसके कर्णाभूषण हैं। वह प्रेमाधिक्य के कारण चंचलता और चपलता से बहती है और समुद्र की ओर इस भाव से दौड़ती हुयी प्रतीत होती है मानो वह समुद्र के केशों को पकड़कर रोकने का प्रयत्न कर रही हो।[2]

---

1. आभ्रं लीलाविहसितमिव श्यावताभ्युपेते,
   सद्यः फेनव्यतिकरमिषादर्पयत्यंशुकान्तम्।
   अम्भः क्रीड़ाकुतुकरभस भ्रष्टचीनोत्तरीये,
   यन्नारीणामुरसि सुबला वीचिहस्तैः सखीव।। प. दू. श्लो. 13
2. प. दू. श्लो. 32

इसी तरह का एक वर्णन और भी आया है। वहाँ पर सागर का इस संकेत में वर्णन किया गया है कि सागर रत्नों का घर है। अगस्त्य मुनि ने क्रोधवश इसे पी लिया था जबकि इसमें मोती-मूंगा-शंख आदि रत्न रहते हैं। लक्ष्मी ने जबसे सागर में निवास करके उसके दुःख को दूर कर दिया।[१]

<u>सरोवर</u> :-

इन खण्डकाव्यों में सरोवरों का वर्णन भी यथासम्भव किया गया है। जैसे कि कालिदास ने एक स्थान पर यह वर्णन किया है कि कैलाश-पर्वत पर स्वच्छ जल वाला जो मानसरोवर स्थित है वह राजहंसों का परम-प्रिय वास स्थान है। वर्षा ऋतु आने पर पर्वत के नीचे के भागों में सरोवरों का जल कीचड़ युक्त हो जाता है इसलिए राजहंस वर्षा में मेघ के साथ-साथ उस मानसरोवर की ओर भी प्रस्थान करते हैं जो कैलाश पर्वत पर उपस्थित है और स्वच्छता का प्रतीक है।[२]

जैनमेघदूतम् में अनेक स्थानों पर सरोवरों का संकेत किया गया है। श्रीकृष्ण और नेमिनाथ जब परस्पर मिलकर जलक्रीड़ा करते हैं तो पक्षियों का कलरव हो रहा है। कवि वहाँपर यह कल्पना करते हैं कि वे कमल मानो हाथ हैं जो कलरव करते हुए पक्षियों को खिला रहे हैं।[३]

---

1. रत्नैर्मुक्तामरकतमहानील सौगन्धिकाद्यैः
   शंखैर्बालावलय रचना बन्धुभिर्विद्रुमैश्च।
   लोधामुद्रारमणमुनिया पीतनिःशैषवारेः
   श्री सर्वस्वं हरति विपदं यत्र रत्नाकरस्य।। प. दू. श्लो.44
2. कर्तुं यच्च प्रभवति महीमुछिलीन्ध्रामवन्ध्यां
   तच्छ्रुत्वा ते श्रवणसुभगं गर्जितं मानसोत्काः।
   आकैलासाद्बिस किसलयच्छेद-पाथेयवन्तः
   सम्पत्स्यन्ते नभसि भवतो राजहंसाः सहायाः।। मे. दू. 1/11
3. जै. दू., पृ. 56

४. नगर - काञ्चीनगर :-

पवनदूतम् के रचनाकार ने अपनी रचना में काञ्चीपुर का उल्लेख किया है। अपने कथन में पवन की स्तुति करते हुए उसे मलय-पर्वत जाने का सन्देश दिया है। उस सन्देश में यह कहा है कि हे पवन! तुम यात्रा करते हुए काञ्चीपुर की ओर जाना। गौड़ देश के आगे जब तुम यात्रा करोगे तो तुम्हें यह काञ्चीनगर प्राप्त होगा। वर्तमान समय में इसे काञ्चीवरम् के नाम से जाना जाता है। यह नगर अत्यधिक वैभव से युक्त है, अपने लीलागृहों के कारण अमरपुर के गर्व को भी नष्ट करने वाला है और सभी प्रकार की सुख-सुविधाओं से पूर्ण है। उस काञ्चीपुर के पास जलक्रीड़ा के लिए अनेक जल सरोवर हैं जिसमें अपने आहलाद को व्यक्त करती हुयीं उस नगर की युवतियाँ स्नान करती हैं। वे युवतियाँ विशेषकर सुबला नदी में स्नान करती हैं जिनसे उनके वक्षस्थल का आंचल उनके शरीर से विलग होता है और इस प्रकार उनका दिल लीला रूप प्रकट होता है।[1] इस रूप में जिस काञ्चीपुरम् का उल्लेख इस काव्य में है वह उरगपुर से आगे और कावेरी नदी के पहले अवस्थित बताया गया है। सम्भवतः सुबला नाम की कोई नदी थी जिसके तट पर यह अवस्थित था।

---

1. लीलागारैरमरनगरस्यापि गर्वं हरन्ती,
   गच्छैः काञ्चीपुरमथ दिशो भूषणं दक्षिणस्याः।
   नक्तं यत्र प्रहरिक इवोज्जागरं नागराणां,
   कुर्वन् पाणिप्रणिहितधनुर्जायते पञ्चबाणः।। प. दू. श्लो. 12

उरगपुर :-

पवनदूतकार ने उरगपुर नाम के एक स्थान का वर्णन अपने इस खण्डकाव्य में किया है। उन्होंने लिखा है कि इस काव्य की नायिका ने पवन को यात्रा करने का मार्ग निर्दिष्ट किया और कहा कि मलयगिरि से आगे दो कोस की ही दूरी पर पाण्ड्य देश है। वहाँ पर ताम्रपर्णी नाम की नदी बह रही है और सुपारी के सुन्दर वृक्ष लगे हुए हैं। उसी नदी के किनारे प्रसिद्ध उरगपुर नाम का नगर है। उस नगर में सौन्दर्य चारों तरफ बिखरा हुआ है, चारों तरफ ताड़ के बड़े-बड़े वृक्ष लगे हुए हैं, उन वृक्षों के पत्ते हिलते हुए अपनी हवा से रागियों के श्रम को दूर करते हैं। यदि तुम्हें सेतुबन्ध तक जाना है तो उरगपुर से ही होकर जाना होगा।[1]

---

1. श्री खण्डाद्रेः परिसरमतिक्रम्य गव्यूतिमात्रं
   गन्तव्यस्ते किमपि जगतीमण्डनं पाण्ड्यदेशः।
   तत्र ख्यातं पुरमुरगमित्याख्यया ताम्रपर्ण्या-
   स्तीरे मुग्धक्रमुकतरुभिर्बद्धरेखे भजेथाः।।
   सम्भोगान्तेश्लथभुजलतानिः सहानां वधूनां,
   व्याधुन्वन्तोऽनुचितकवरीभारमव्याजमुग्धम्।
   अस्मिन् सद्यः श्रमजलनुदः सौधजालैरुपेत्य,
   प्रत्यासन्ना मलयमरुतस्तालवृन्ती भवन्ति।।
   प. दू. श्लो. 8,9

उज्जयिनी :-

कालिदास ने मेघदूतम् खण्डकाव्य में उज्जयिनी अथवा अवन्तिका का वर्णन किया है। इस वर्णन में कालिदास ने यह लिखा है कि वहाँ का राजा उदयन इतना अधिक यशस्वी राजा था कि अवन्ति नगरी के वृद्धजन निरन्तर उसका यशगान करते थे। वह उज्जयिनी नगरी ऐसी थी मानो स्वर्ग में पुण्यफल कम हो जाने पर पृथ्वी में आने वालों के लिए स्वर्ग के एक टुकड़े के सदृश थी।[१]

उस अवन्तिका का वर्णन करते हुए कालिदास ने उसकी यह विशेषता लिखी है कि वह जिस नदी तट पर बसा हुआ है वह नदी क्षिप्रा है। उस नदी के दोनों ओर सारस पक्षियों का कलरव गूंजता रहता है। इसी तरह से उस नदी के जल में जो कमलपुष्प विकसित हैं उनके सम्पर्क से सुगन्धित शीतल क्षिप्रा का वायु वहाँ के प्रियजनों के शरीर की सुखद तथा शीतल स्पर्श देता रहता है।[२]

---

1. प्राप्यावन्तीनुदयनकथा–कोविदग्रामवृद्धान्
   पूर्वोद्दिष्टामनुसर पुरीं श्रीविशालां विशालाम्।
   स्वल्पीभूते सुचरितफले स्वर्गिणां गां गतानां
   शेषैः पुण्यैर्हृतमिव दिवः क्रान्तिमत् खण्डमेकम्।। मे. दू. 1/30
2. दीर्घीकुर्वन् पटु मदकलं कूजितं सारसानां
   प्रत्यूपेषु स्फुटितकमलामोदमैत्री कषायः।
   यत्र स्त्रीणां हरति सुरतग्लानिमङ्गानुकूलः
   शिप्रावातः प्रियतम इव प्रार्थना चाटुकारः।। मे. दू. 1/31

उज्जयिनी की सम्पन्नता को भी कवि ने कल्पनाशील के साथ रेखांकित किया है। उन्होंने लिखा है कि वहाँ के बाजारों में असंख्य बहुमूल्य मोतियों की मालायें टगीं रहती हैं, उन मालाओं के मध्य में बड़े-बड़े रत्न गुथे होते हैं। वे रत्न ऐसे होते हैं जिनसे शंखों जैसी, शीपियों जैसी धवल-कान्ति निरन्तर प्रवाहित होती रहती है। कुछ मणियाँ ऐसी भी होती हैं जो हरे रंग की अपनी कान्ति से चारों ओर सौन्दर्य बिखेरती हैं। वहाँ पर सजी हुयी मरकत-मणियों को और मूंगों के टुकड़ों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है जैसे- रत्नाकर अब रत्नविहीन हो गया हो। अर्थात् उसके रत्न बाहर निकलकर आ गये हों।[1]

कालिदास ने उज्जयिनी की रम्यता को भी रेखांकित किया है। वहाँ जो दन्तकथायें प्रचलित है उनमें उदयन के द्वारा वासवदत्ता का अपहरण विशेष रूप से मनोरंजक है। कालिदास संकेत करते हैं कि वहीं पर प्रद्योत का सोने का बना हुआ ताल वृक्ष था। यहीं पर नीलगिरि नाम के राजा का मदमत्त हाथी खम्भों को उखाड़ा करता था और घूमा करता था।

---

1. हारांस्तारांस्तरलगुटिकान्कोटिशः शंखशुक्तीः
   शष्प श्यामान्मरकतमणीनुन्मयूख प्ररोहान्।
   दृष्ट्वा यस्यां विपणिरचितान्विद्रुमाणाञ्च भङ्गान्
   संलक्ष्यन्ते सलिलनिधय-स्तोयमात्रावशेषाः।। मे. दू. 1/32
2. प्रद्योतस्य प्रियदुहितरं वत्सराजोऽत्र जह्रे
   हैमं तालद्रुमवनमभूदत्र तस्यैव राज्ञः।
   अत्रोद्भ्रान्तः किल नलगिरिः स्तम्भमुत्पाटयदर्पा-
   दित्यागन्तून् रमयति जनौ यत्र बन्धूनभिज्ञः।। मे. दू. 1/33

अलकापुरी :-

कालिदास कैलाश में स्थित जिस अलका का परिचय देता है वह अलकानगरी भी सभी प्रकार के सौन्दर्य से मण्डित है। यक्षाधिप कुबेर की वह नगरी है इसलिए वह सभी प्रकार की सम्पन्नता से मण्डित है। कालिदास उसका परिचय देते हुए लिखते हैं कि प्रियतम के समान कैलाश की गोद में खिसक गया है गंगारूपी वस्त्र जिसका ऐसी अलका को प्रियतम की गोद में खिसक गयी है साड़ी जिसकी ऐसी कामिनी की तरह देखकर अवश्य पहचान जाओगे। जो अलका वर्षा के समय जल बरसाने वाले मेघ समूह को वैसे ही धारण करती है जैसे क्रोध रहित कोई कामिनी मोतियों की लड़ियों से गुंथे केशपाश को धारण करती है।[१]

मेघदूत के उत्तर भाग में कालिदास ने अलका के जिस सौन्दर्य को रेखांकित किया है वह अनूठा है और काव्य जगत् की दृष्टि से अद्भुत है। अलका के साथ मेघ की साम्यता का वर्णन करते हुए कवि लिखता है कि अलका की रमणियाँ, चित्रशालायें, नृत्य और गीत के समय बजाये गये मृदङ्ग, मणियों से खीचें गये फर्श, आकाश को स्पर्श करने वाले गगनचुम्बी देवालय की समता करते हैं।[२]

---

1. तस्योत्सङ्गेव प्रणयिन इव स्त्रस्तगंगादुकूलं
   न त्वं दृष्ट्वा न पुनरलकां ज्ञास्यसे कामचारिन्।
   प्रातः काले वहति सलिलोद्गारमुच्चैर्विमाना
   मुक्ताजालग्रथितमलकं कामिनीवाभ्रवृन्दम्।। मे. दू. 1/63
2. मे. दू. 2/1

उस अलकानगरी का वैभव इस खण्डकाव्य का एक महत्वपूर्ण अंश है। अलका में पुष्प निरन्तर विकसित होते हैं, उन पुष्पों पर भौरें निरन्तर गुञ्जरित होते हैं, कमल के पुष्प वहाँ पर निरन्तर खिले रहते हैं इसलिए हर समय हंस पक्तियों का भ्रमण नित्य होता रहता है। घर में पले हुए जो मयूर हैं वे हर समय अपनी ध्वनि से सभी भवनों को ध्वनित करते रहते हैं, और निरन्तर चन्द्रमा की ज्योत्सना से प्रकाशित रात्रियाँ अन्धकार को नष्ट करके रमणीयता बिखेरती हैं।[1]

इसी प्रकार के और भी अनेक वर्णन हैं जिनमें अलका की रम्यता और वहाँ पर लगे हुए कल्पवृक्ष की विशेषता का वर्णन किया गया है। एक स्थान पर कवि अलका में लगे हुए कल्पवृक्ष का वर्णन करते हुए लिखता है कि हे मेघ! जिस अलका में एक कल्पवृक्ष ही, अनेक रंग के वस्त्र, आंखों के विलास की शिक्षा देने में कुशल मद्य, नवीन पत्तों के साथ फूलों का आविर्भाव अनेक प्रकार के आभूषण और चरण कमल के लगाये जाने योग्य महावर या मेहदी, इस तरह स्त्रियों की सम्पूर्ण प्रसाधन सामग्री को उत्पन्न करता है।[2]

---

1. यत्रोन्मत्तभ्रमर:मुखरा: पादपा: नित्यपुष्पा:
   हंसश्रेणीरचितरशना नित्यपद्मा नालिन्य:।
   केकोत्कण्ठा भवन शिखिनो नित्यभास्वत्कलापा
   नित्यज्योत्स्ना: प्रतिहततमोवृत्तिरम्या: प्रदोषा:।। मे. दू. 2/3
2. वासश्चित्रं मधु नयनयोर्विभ्रमादेशदक्षं
   पुष्पोद्भेदं सह किसलयैर्भूषणानां विकल्पान्।
   लाक्षारागं चरणकमलन्यासयोग्यं च यस्या
   मेकः सूते सकलमबलामण्डनं कल्पवृक्षः।। मे. दू. 2/13

५. तीर्थ :- <u>पञ्चाप्सर तीर्थ</u> :-

पवनदूतम् के रचनाकार ने अपने इस खण्डकाव्य में पञ्चाप्सर नामक तीर्थस्थान का संकेत किया है। इस स्थान का निर्माण माण्डकर्णी नामक ऋषि ने किया था। यह एक ऐसा सरोवर है जो अपनी रम्यता के कारण आकर्षक है और जिसके चारों ओर साल के वृक्ष लगे हैं जिनकी रम्यता से वह स्थान और अधिक आकर्षक हो गया है। यह स्थान इसलिए तीर्थ के रूप में कहा गया है क्योंकि इसमें स्नान करने से देवराज इन्द्र के कष्ट दूर हुए थे। इस सरोवर में निरन्तर स्वर्ग से आकर अप्सरायें स्नान करती हैं जिससे यहाँ पर एक विशेष प्रकार का संगीत निरन्तर ध्वनित होता रहता है क्योंकि हरिण संगीत के प्रति अत्यधिक रुचि वाले होते हैं इसलिए वे समूहबद्ध होकर इसके पास ही भ्रमण करते रहते हैं और इस संगीत का आनन्द लेते हैं।[१]

इसी श्लोक की टिप्पणी में यह कहा गया है कि यह तीर्थ माल्यवन्त के उत्तर भाग में अवस्थित है। माण्डकर्ण ऋषि परम तपस्वी थे, उन्होंने ऐसा तप किया था कि उनका तप नष्ट कराने की दृष्टि से देवताओं ने अप्सराओं को यहाँ भेजा था। इस जलवाष्प के अन्दर एक क्रीड़ागृह बनवाया था जिसके अन्दर से सदा संगीत की ध्वनि आती रहती थी। सम्भवतः यह अप्सराओं के नृत्य तथा संगीत की ध्वनि थी।

---

1. रम्योपान्तं सरलतरुभिर्माण्डकर्णेः सरस्तद्,
गच्छेः पञ्चाप्सर इति द्रुतप्रौढतापं मघोनः।
यत्राद्यपि त्रिदशतरुणीमुग्धसंगीतिमाला,
पूर्वप्रेमोदगतहरिणश्रेणिमुत्कण्ठयन्ति।। प. दू. श्लो. 19

६. प्रदेश :- <u>माल प्रदेश</u> :-

कालिदास ने मेघ के यात्रा का जो पथ बताया है उस पथ में एक ऐसे प्रदेश का वर्णन किया है जो प्रदेश अपनी कृषि उपज के लिए मेघ के आधीन है। अर्थात् वह प्रदेश ऐसा है जहाँ कि भूमि आकाश से हुयी वृष्टि के हेतु में अन्न नहीं देती है। इसलिए उस भूमि को तृप्त करने के लिए यक्ष मेघ से कहता है कि तुम उस प्रदेश में होते हुए अलका नगरी की यात्रा करना। इसी के साथ ही यक्ष कहता है कि वहाँ के निवासी अत्यधिक सरल और संसार के छल-प्रपंच से दूर हैं इसलिए जब तुम वहाँ जाओगे और उस भूभाग पर वर्षा करोगे तो वहाँ की कृषि उपज के योग्य हो जायेगी और वहाँ के कृषक अपने कार्य में संलग्न हो जायेगें। इस स्थिति में वहाँ के कृषक अपने कार्य में संलग्न हो जायेंगे। इस स्थिति में वहाँ की जो मुग्धा युवतियाँ हैं वे प्रेमपूर्वक तुम्हारा दर्शन करेगीं और तुम इससे कृतार्थता का अनुभव करोगे। इसलिए हे मेघ! तुम उस मालव प्रदेश की ओर अवश्य जाओ। तुम्हारी वर्षा से उस प्रदेश की धरती भीनी सुगन्धि वाली हो जायेगी और वह प्रदेश आनन्द देने वाला हो जावेगा।[1]

---

1. त्वय्यायत्तं कृषिफलभिति भ्रूविलासानभिज्ञैः
   प्रीतिस्निग्धैर्जन पदवधूलोचनः पीयमानः।
   सद्यः सोरोत्कषणसुरभि क्षेत्रमारुह्य मालं
   किञ्चित्पाश्चाद् व्रजलघुगतिभूर्य एवोत्तरेण।।   मे. दू. 1/16

७. मन्दिर :- <u>महाकालेश्वर</u> :-

कालिदास के इष्ट भगवान् शिव हैं। इसलिए वे उस नगरी का वर्णन करते हैं जिस नगरी में भगवान् शिव का प्रसिद्ध महाकाल मन्दिर अवस्थित है। यक्ष मेघ से कहता है कि अपनी यात्रा में जब उज्जयिनी नगरी को प्राप्त करोगे तो वहाँ पर भगवान् शिव के प्रसिद्ध मन्दिर महाकाल का दर्शन भी करोगे। भगवान् शिव नीलकण्ठ कहे जाते हैं, तुम्हारा स्वरूप भी नीला है इसलिए अपने इष्ट के सदृश तुम्हारा दर्शन करके भगवान् शिव के गण प्रसन्नता का अनुभव करेंगे। इसी तरह से वहाँ से प्रवाहित होने वाली नदी में युवतियों द्वारा जलक्रीड़ा होती है और उस जल की शीतलता का स्पर्श करके वायु निरन्तर बहता है। वह वायु भगवान् शिव के महाकाल मन्दिर का स्पर्श करता है और इससे उस मन्दिर का आकर्षण और अधिक बढ़ जाता है।[१]

इस श्लोक की टीका में टीकाकार ने भगवान् शिव के कण्ठ के नीले हो जाने का हेतु यह दिया है कि वह समुद्र मन्थन के समय जो विष निकला था, भगवान् शिव ने संसार की रक्षा के लिए उसका पान कर लिया था इसलिए उनका कण्ठ नीला हो गया था। सम्भवतः तभी से भगवान् शिव का एक नाम नीलकण्ठ प्रचलित हुआ। जैसा भगवान् शिव का कण्ठ नीला है, वैसी नीलिमा शिव की है।[२]

---

1. भर्तुः कण्ठच्छविरितिगणैः सादरं वीक्ष्यमाणः
   पुण्यं यायास्त्रिभुवनगुरोर्धाम चण्डीश्वरस्य।
   धूतोद्यानं कुवलयरजोगन्धिभिर्गन्धवत्या
   स्तोयक्रीडानिरतयुवतिस्नानतिक्तैर्मरुद्भिः।। मे. दू. 1/33
2. वही, पृ. 89

७. देश :- <u>दशार्ण देश</u> :-

कालिदास का मेघदूतम् खण्डकाव्य विविध प्रदेशों की स्थिति का वर्णन भी करता है इसलिए यक्ष मेघ को सम्बोधित कर कहता है कि हे मेघ! जब तुम आगे की ओर चलोगे तो तुम्हें दशार्ण देश प्राप्त होगा। तुम्हारे पहुँचने से उस प्रदेश में जो बगीचे लगे हैं और जिन बगीचों में केतकी के वृक्ष लगे हुए हैं उनके फूल पीले हो जायेंगे। तुम्हारा वहाँ पहुँचने का समय ऐसा होगा जब कौओं को खाने के लिएबलि दी जा रही होगी और वर्षा ऋतु का आगमन देखकर कौओं के समूह वहाँ के वृक्षों पर अधिक मात्रा में घोंसले बना रहें होगें। इससे वृक्षों पर रहने वाले कौओं की भरमार हो जायेगी और वृक्षों की शाखाओं में संकीर्णता बढ़ जायेगी। दशार्ण प्रदेश में जामुन के वृक्ष अधिक मात्रा में होते हैं इसलिए उन वृक्षों में लगे हुए फल पक जायेंगे, काले हो जायेंगे और उस कालिमा से सारा प्रदेश एक विशेष प्रकार की सुन्दरता से मण्डित हो जाऐगा। तुम्हारे पहुँचने से ऋतु का परिवर्तन होगा और इस परिवर्तन के प्रभाव से हंस प्रभावित होगें इसलिए वे भी कुछ दिन रहकर मानसरोवर की ओर प्रस्थान करेंगे क्योंकि वर्षाकाल में हंस मानसरोवर से पृथक् स्थान पर नहीं रहते हैं।[1]

---

1. पाण्डुच्छामोपवनवृतयः केतकैः सूचिभिन्नै–
   नीडारम्भैर्गृहबलिभुजाकुलग्रामचैत्याः।
   त्वय्यासन्ने परिणतफलश्यामजम्बूवनान्ताः
   सम्पत्स्यन्ते कतिपय दिनस्थानिहंसा दशार्णा।। मे. दू. 1/23

दशार्ण प्रदेश की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए कालिदास ने इस प्रदेश की स्थिति वेत्रवती नदी के तट पर बतायी है। इससे यह संकेत प्राप्त होता है कि दशार्ण की राजधानी विदिशा थी। प्राचीन भारत में विदिशा की अत्यधिक प्रसिद्धि रही है और यह राजधानी ऐसी रही है जिसे विलासता की राजधानी के साथ-साथ सम्मान की राजधानी भी कहा जाता रहा है। कालिदास ने यक्ष के द्वारा मेघ को यही संकेत दिया कि जब तुम दशार्ण देश को प्राप्त करोगे तो उस देश में भ्रमण करते हुए उसकी विदिशा नामक राजधानी में अवश्य पहुँचना। वह राजधानी ऐसी है जिसमें विलासिता की सम्पूर्ण सामग्री एकत्रित है। वहाँ के लोग धन-धान्य से सम्पन्न हैं, राजा यशस्वी है प्रजा आनन्द का अनुभव कर रही है। कवि ने लिखा है कि यक्ष ने मेघ से कहा कि वहाँ की वेत्रवती अपनी तरंग युक्त जलप्रवाह से आकर्षण का केन्द्र है। तुम जब उस वेत्रवती के तट पर पहुँचोगे तो ऐसा प्रतीत होगा कि किसी नायिका के कटाक्षयुक्त अधर होवें। इस प्रकार की उस वेत्रवती को प्राप्त करने के बाद जहाँ तुम उल्लसित होगे वहीं पर वेत्रवती भी परिपूर्णता को प्राप्त करेगी।[1]

---

1. तेषां दिक्षु प्रथितविदिशालक्षणां राजधानीं
   गत्वा सद्यः फलमविकलं कामुकत्वस्य लब्धा।
   तीरोपान्तस्तनितसुभगं पास्यसि स्वादु यस्मात्
   सभ्रूभङ्ग मुखमिव पयो वेत्रवत्याश्चलोर्मि।। मे. दू. 1/24

उपसंहार-समीक्षा :-

संस्कृत वाङ्मय एक इस प्रकार का वाङ्मय है जो लौकिक और पारलौकिक जीवन में मनुष्य के लिए ऐसी दिशा देता है जिससे उसका एक ओर लोक कल्याण होता है तो दूसरी ओर उसे पारलौकिक सिद्धि भी प्राप्त होती है। काव्यजगत् एक ऐसा रचना संसार है जो मनुष्य के वर्तमान जीवन को सम्हालता ही है आनन्द के उन क्षणों को प्राप्त कराता है जिनसे मनुष्य की परिपूर्णता होती है। वैदिक छन्दों से लेकर लौकिक संस्कृत साहित्य में जिस सतत आनन्द का संचार हुआ है सन्दर्भित खण्डकाव्य लोकजीवन में उसी की बढ़ोत्तरी करते हैं। आकार की दृष्टि से ये रचनायें भले ही संक्षिप्त होंवे किन्तु इनके माध्यम से जिस विषय-वस्तु को उपस्थापित किया गया है वह आनन्द की वाहिका है और किसी भी पाठक के लिए इन काव्यों से प्राप्त आनन्द सुखदायी हो सकता है।

इस कार्य के सातत्य में इन काव्यों के माध्यम से जो देखा गया उसके अनुसार इनमें प्रकृति की परिपूर्णता मनुष्य के हृदय की संवेदनशीलता और भौगोलिक परिचय की विशालता दृष्टिगत होती है। इन काव्यों के कवियों ने जिस रूप में रचनायें प्रस्तुत की हैं उनका संसार अनूठा है और इस प्रकार ये काव्य संस्कृत काव्य परम्परा के मणि पाठ हैं। इनका पठन-पाठन न केवल पाठक को आनन्द देता है अपितु उसके ज्ञान को भी बढ़ता है। इस कार्य पर शोध कार्य की अनन्त सम्भावनायें हैं।
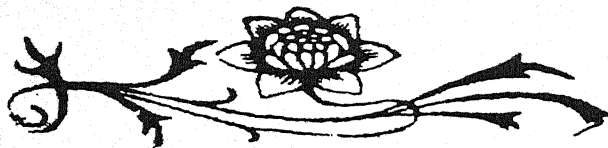
उद्धृत ग्रन्थ-सूची

१. अग्निपुराण	संस्कृति संस्थान बरेली १९६९
२. श्री आर्य कल्याण गौतम स्मृति ग्रन्थ	–मुनि कला प्रभसागर बम्बई
३. ऋग्वेद	पारडी, सूरत १९५७
४. काव्य प्रकाश	आचार्य विश्वेश्वर ज्ञानमण्डल लि०, वाराणसी २०३१
५. काव्यालंकार सूत्र	आत्माराम एण्ड सं० दिल्ली १९५४
६. काव्यादर्श	कमलमणि ग्रन्थमाला वाराणसी–वि.सं. १९३८
७. गीतगोविन्द	आचार्य जयदेव
८. चन्द्रलोक	आचार्य जयदेव
९. छन्दोऽनुशासन	निर्णयसागर प्रेस बम्बई–१९१२
१०. छन्दो मंजरी	चौखम्बा प्रकाशन वाराणसी
११. जैन मेघदूतम्	पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वारणसी–१९८९
१२. तैत्तरीय संहिता	आनन्दाश्रम ग्रन्थावली १९०१
१३. ध्वन्यालोक	आचार्य विश्वेश्वर १९६२
१४. नाट्यशास्त्र	चौखम्बा संस्कृत सीरीज वाराणसी १९२९
१५. नीतिशतक	आचार्य भर्तृहरि

१६. नेमिदूतम् — धीरेन्द्र मिश्र पार्श्वनाथ शोधपीठ वाराणसी १९६४

१७. नोट्स आफ संस्कृत लि० खण्ड प्रथम

१८. पवनदूतम् — सं. डॉ. कृष्णावतार बाजपेई महालक्ष्मी प्रकाशन, आगरा-२

१९. पिंगलछन्द सूत्र — वाचस्पति मुद्रणालय कलकत्ता १९२८

२०. बृहदारण्यकोपनिषद् — गीताप्रेस,गोरखपुर

२१. मुण्डकोपनिषद् — गीताप्रेस गोरखपुर

२२. मेघदूतम् (पूर्व) — श्री विद्यानाथ झा कृष्णदास अकादमी,वाराणसी-२००२

२३. मेघदूतम् (उत्तर) — डा. बाबूराम त्रिपाठी महालक्ष्मी प्रकाशन आगरा-२

२४. रस सिद्धान्त — डॉ. नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली-१९६४

२५. वृत्तारत्नाकर — संस्कृत पुस्ताकलय दरिया गंज दिल्ली, १९४१

२६. वृत्तमौक्तिक — राजस्थान विद्या प्रतिष्ठान १९६५

२७. वृत्तवार्तिक — त्रावणकोर राकीय प्रेस-१९३७

२८. वैराग्य शतक — आचार्य भर्तृहरि

२९. संस्कृत के संदेश काव्य — -डॉ. रामकुमार आचार्य राजकीय कालेज अजमेर १९६३

३०. संस्कृत साहित्य के इतिहास की अलोचनात्मक रूपरेखा — डॉ. कृष्णकान्त एवं डॉ. गदाधर त्रिपाठी, कमला प्रकाशन, कानपुर १९७४

३१. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास — डॉ. कपिल देव द्विवेदी, रामनारायण विजयकुमार इलाहाबाद-२०००

३२. संस्कृत साहित्य का इतिहास — डा. दयाशंकर शास्त्री, भारतीय प्रकाशन कानपुर १९७८

३३. साहित्य दर्पण — निर्णय सागर प्रेस, बम्बई

३४. साहित्य दर्पण — डॉ. बाबूराम त्रिपाठी, महालक्ष्मी प्रकाशन आगरा २००२

३५. सुवृत्त तिलक — चौखम्बा विश्व भारती, वाराणसी

३६. शतपथ ब्राह्मण — का.हि.वि. वि.-१९९४

३७. शृङ्गार शतक — आचार्य भर्तृहरि

३८. श्रुतबोध — निर्णय सागर प्रेस-१९२८

३९. हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटिरेचर — कीथ - १९४८

४०. शीलदूतम् — पार्श्वनाथ शोधपीठ वाराणसी १९९३